प्रकाशक :

श्री भीष्म ज्योतिष कार्यालय, बरवाना

जनपद (अलीगढ़)

प्रथमावृत्ति : एक हजार

वर्ष : १९७१ ई०

मूल्य-एक रुपया मात्र

मुद्रक :

ऋतानन्द प्रेस

मेरठ कैन्ट

श्री गणेशाय नमः

सतानन्द-सदुपदेश-संग्रह

(भक्ति–सत्संग–ज्ञान विषयक विवेचना।)
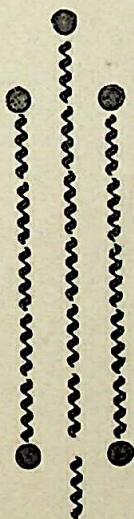
लेखक तथा सम्पादक

पं० सतानन्द त्रिपाठी शास्त्री

श्री भीष्म ज्योतिष कार्यालय

बरवाना (अलीगढ़) उत्तर प्रदेश
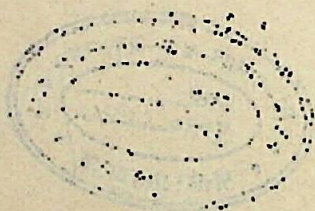
पं० सतानन्द शास्त्री, बरनावा
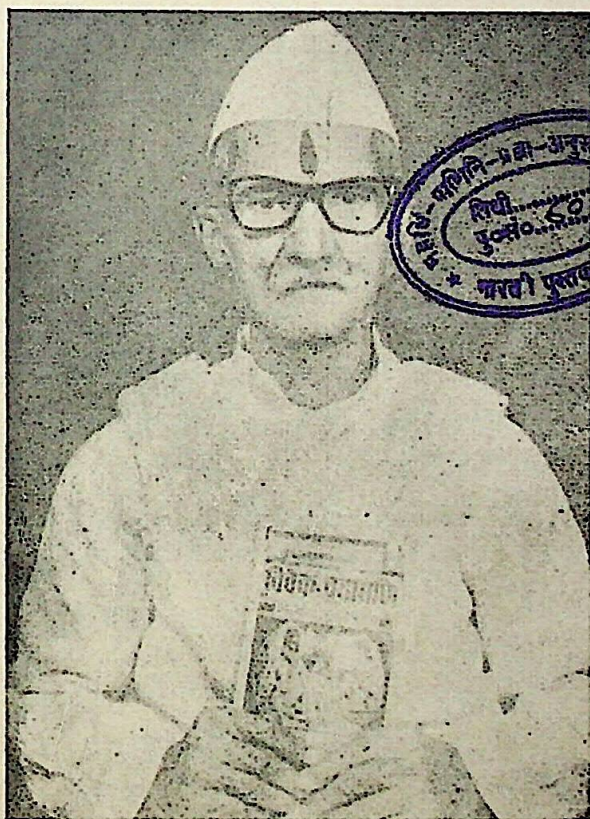
धर्म ज्ञान उपदेश सों, जिन कीन्हा उद्धार।
जनक गुरू के पद-कमल, बन्दौं बारम्बार॥
—ना० द० त्रिपाठी

प्राक्कथन
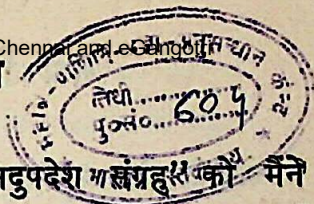
प्रस्तुत पुस्तक "सतानन्द सदुपदेश संग्रह" को मैंने आद्योपान्त देखा। पढ़कर लेखक की उत्कृष्ट विचारधारा एवं ईश्वरोन्मुखी प्रवृत्तियों का दिग्ददर्शन कर मुझे परम प्रसन्नता का अनुभव हुआ। पुस्तक मानव जीवन के उद्धार के लिये परमोपयोगी है। विचारों की उच्चता हृदयग्राही है साथ ही वेद शास्त्रादि के उद्धरण लेखक की विद्वत्ता का परिचय प्रस्तुत करते हैं।

लेखक ने जिस अभिलाषा को दृष्टिगत करके प्रस्तुत पुस्तक का प्रणयन किया है वह अभिलाषा साकार बन कर पाठकों के जीवन को सफल बनाये ऐसी मेरी शुभ कामना है। तथा पुस्तक प्रणयन के लिये एवं विद्वत्ता के लिये श्री पं० सतानन्द जी शास्त्री जो एक वयोवृद्ध एवं अनुभवी विद्वान है धन्यवाद के पात्र हैं। मैं इनके प्रयास की सफलता हेतु प्रार्थना करता हूं।

पुरुषोत्तम वाशिष्ठ शास्त्री
साहित्याचार्य एम. ए. स० अध्यापक
श्री आदर्श मेहता सं. म. विद्यालय
सोरों (एटा)

नम्र निवेदन :—

बोधोहिं को यस्तु विमुक्तिहेतुः ।

बोध (ज्ञान) वही है जो कि मुक्ति का कारण हो । सत्पुरुषो ! यह संग्रह क्यों लिखा गया ? सुविज्ञ, श्रद्धालु पुरुषों का विशेष आग्रह था कि मैं अपने जीवन काल के कुछ अनुभव जनता जनार्दन के सम्मुख रखूँ । इसी आधार को दृष्टिगत कर यह "सतानन्द सदुपदेश संग्रह" ईश्वर की कृपा से आपके हाथों में है । यह पुस्तक सात प्रकरणों में विभक्त है यथा- वन्दना, मानव जीवन और उसकी सार्थकता, सत्संग महिमा भक्ति महिमा, वेदान्त विवेचन तथा उपयोगी प्रश्नोत्तरी एवं भजनावली ।

इन प्रकरणों में भक्त कवियों, संतों, ऋषियों की वाणी तथा वेद शास्त्रों के सदुपदेशमय वाक्य संगृहीत है । प्रश्नोत्तरी अनूदित रचना है । आज के मानव की वृत्ति भौतिकता की ओर अग्रसर हो रही है, धर्म ज्ञान सत्संग की ओर नहीं है । इसको दृष्टिगत कर भगवद्भक्ति ज्ञान की ओर अभिरुचि जागरूक करने के प्रयास में यह पुस्तक लिखी गई है ।

भजनावली संग्रह में ब्रह्मज्ञान, माया एवं भक्ति विषयक भजन संगृहीत हैं । जो समय समय पर चि० नारायण दत्त की माता जी द्वारा गाये जाते रहे हैं । इनमें कुछ उनके

हृदय तन्त्री से निसृत अपने भाव हैं। जीवन परिचय देने की आवश्यकता इस पुस्तक में नहीं थी तथापि अवस्था का ध्यान रखकर अन्तर्साक्ष्य की पुष्टि में श्री पुरुषोत्तम वाशिष्ठ के विशेष आग्रह पर समाविष्ट कर दिया गया है। इस पुस्तक के प्रणयन में श्रीयुत बांके बिहारी लाल "विनोद" के सहयोग के लिये मैं हार्दिक धन्यवाद प्रदान करता हूं।

मेरी यह अभिलाषा है कि मेरी इस पुस्तक से सम्बन्धित सहयोगी एवं पाठक गण सुखी रहें तथा इससे लाभ उठायें। आशा है मुमुक्षु विज्ञ पुरुष इससे लाभान्वित होकर आत्म-कल्याण कर सकेंगे, इसी में मेरा एवं उनका हित है।

विनीत :—

सतानन्द त्रिपाठी, शास्त्री
श्री भीष्म ज्योतिष कार्यालय
बरवाना
जिला अलीगढ़

विषयानुक्रमणिका

———

जीवन–वृत्त

"अखण्ड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे ।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिये मरे ॥"

इस आर्यावर्त की पावन भूमि पर अनेक पुण्यात्मा उदारमना ब्रह्मनिष्ठ, तत्वज्ञानी महापुरुषों ने अवतरित होकर अपने पवित्र आदर्शों से जन-मानस में ज्ञान गरिमा की पावन गंगा प्रवाहित करके जो पवित्र भावना उद्भूत की है वह चिरस्मणीय रहेगी। जिसने समय समय पर समाज का उद्धार किया है। ऐसे ही सत्पुरुषों में से एक विद्वान् पुरुष का जन्म ब्रज क्षेत्र के अलीगढ़ जनपदान्तर्गत बरवाना ग्राम में लब्धप्रतिष्ठ सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में पं० गजाधर प्रसाद त्रिपाठी के यहाँ सम्वत् १९५० विक्रमी, मार्गशीष शुक्ला २, रविवार, मूलनक्षत्र तदनुसार १५ नवम्बर सन् १८९३ ई० को हुआ। कौन जानता था कि यह वालक आगे चलकर एक प्रकाण्ड-पण्डित, मेधावी एवं सफल ज्योतिषी बनकर इस क्षेत्र में प्रसिद्ध होगा।

जातक का नामकरण मूलनक्षत्र के चतुर्थचरण के नियमानुसार 'भीष्मदेव' रखा गया परन्तु बालचापल्य के कारण बाल्यावस्था में 'शैतान' जो कालान्तर में 'सतानन्द' नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्राथमिक शिक्षा ग्राम के विद्यालय में

ही सम्पन्न हुई। माता पिता १५ वर्ष की आयु में ही इन्हें छोड़कर सदा के लिये इस संसार से विदा हो गये। अतः इनका पालन-पोषण, शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था इनके बड़े भाई पं० सुखनन्दन और पं० शिवचरण लाल ने की। आगामी शिक्षा के लिये आप संस्कृत विद्यापीठ हाथरस में पं० नारायणदत्त शास्त्री के सान्निध्य में ४ वर्ष तक निरन्तर अध्ययन करते रहे तदुपरांत गुरुकुल वृन्दाबन में श्रीं पं० धरणिधर शास्त्री के सामीप्य में संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण, न्याय तथा ज्योतिष विषयक ज्ञान अर्जित किया तथा 'शास्त्री' की उपाधि से विभूषित किये गये। इस प्रकार गृहकार्य में दक्ष तथा पाण्डित्य कर्म में लीन रहकर समाज की सेवा करने लगे। इनका शुभ विवाह एक सुशील सौम्य स्वभाव वाली एवं विदुषी कन्या भागवती देवी के साथ सम्बत् १९७७ में हुआ।

गृहस्थ जीवन और पाण्डित्य कर्म में निरत रहने पर आपकी अभिरुचि काव्य एवं साहित्य स्रजन की ओर निरंतर बढ़ती रही। श्रीमद्भागवत् के सप्ताह-पठन, एवं प्रवचन में समय समय पर पण्डित जी सोल्लास भाग लेते रहे हैं। कर्मकाण्ड संध्या वंदन, यज्ञ, पूजा, अर्चना में परायण रहने पर भी आपकी निष्ठा सदा साहित्य सेवा और आर्यसमाज के प्रति जागरूक रही। इन सब धार्मिक कृत्यों का प्रभाव

इनकी पत्नी पर विशेष रूप से पड़ा तथा वे भी इन सभी व्रत-उपासना आदि को करती हुई सम्यक् ज्ञान की ओर अग्रसर हुईं तथा वैदान्तिक दीक्षा इस दम्पति ने श्री १०८ श्री स्वामी प्रकाशानन्द जी महाराज से प्राप्त कर समीचीन ज्ञान की वृद्धि की।

पण्डित जी ने समाज के पाखण्ड तथा रूढ़िवादिता पर प्रहार कर "काला चाँद" नामक एक लघु उपन्यास "सत्यार्थ प्रकाश की व्याख्या" "वर्णाश्रम विवेचन" तथा विभिन्न विषयों पर फुटकर रचनायें लिखी हैं जिनमें सामाजिक कुरीतियों तथा पाखण्डों का खण्डन करते हुए, उनमें सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है। प्रस्तुत पुस्तक "सतानन्द-सदुपदेश संग्रह" आपके जीवन अनुभव की मर्मस्पर्शी अनूठी कृति है जिसमें सत्संग, भक्ति, ज्ञान की समन्वित धारा प्रवाहित करते हुए मानव कल्याण की ओर सत्प्रयास है।

धर्मप्रवण, उदारमना अवागढ़ नरेश महाराजा सूर्यपाल सिंह जी ने सन् १९३५ में एक "विद्वत् गोष्ठी" का आयोजन किया जिसमें विविध विषयों पर प्रवचन यज्ञ-समारोह तथा शास्त्रार्थ आदि सम्पन्न हुए। शास्त्रार्थ के आधार पर विद्वानों को पुरस्कृत भी किया गया। इस अवसर पर पण्डित जी प्रथम श्रेणी के आचार्यों में पुरस्कृत किये गये। तदुपरांत अवागढ़ नरेश एवं अनेक गण्यमान्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहाँ विभिन्न धार्मिक कृत्यों पर प्रवचनादि समारोहों में आपका

आवागमन निरंतर चलता रहा।

आपकी भाषा मधुर सरल सुबोध ब्रज है जिसमें लल्लूलाल जी की भाषा का पुट भी पाया जाता है। आपके प्रवचन ओजस्वी, संस्कृत श्लोकों के प्रमाणों से युक्त और दृष्टान्तमय होते हैं। रोते व्यक्ति को हँसा देना, जनसाधारण को प्रभावित करना, कटु सत्य स्पष्ट शब्दों में कह डालना आपकी सफल शैली है। आपकी भाषा सरस सरल वर्ण विन्यास से युक्त है तथा रस अलंकार, रीति, वृत्ति एवं प्रसाद गुण से युक्त दोहा एवं चौपाई के माध्यम से मुखरित हुई है।

पण्डित् जी इस समय ७८ वर्षीय समाज सेवी, परमार्थ-चिंतन निरत, पारिवारिक जीवन से विरत जीवन यापन कर रहे हैं। आपके परिवार में साध्वी पत्नी, दो पुत्र श्री नारायणदत्त त्रिपाठी और भगवानदत्त त्रिपाठी और सुपुत्री ओ३म्वती देवी तथा दोनों पुत्र वधू स्वाध्यायनिरत, कर्तव्यनिष्ठ सुखद जीवन यापन कर रहे हैं।

उस परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि पण्डित जी चिरायु रहें और पण्डित जी जैसे समाज सेवी, ज्ञानी, पुण्यात्मा पुरुष इस धरा को सदैव विभूषित करते रहें, जिससे समाज सद्प्रेरणा पा सके। ऐसी हमारी कामना है।

आचार्य बाँकेबिहारी लाल 'विनोद'
नई दिल्ली।
एम. ए. साहित्यरत्न

वन्दना, गणेशोपासना

ओ३म् गणानान्त्वा गणपति ँ हवामहेप्रियाणान्त्वा प्रियपति ँ हवामहे निधीनान्त्वा निधिपति ँ हवामहे वसोमम। आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम् ।। यजु० अ० २३।१९

दोहा—'गिरिजानन्दन असुरनिकन्दन गणपति प्यारो नाम।
जन मन रञ्जन ज्ञाननिधि, तुमको करूँ प्रणाम ।।

गुरू—वन्दना

श्लोक—गुरूब्रह्मा गुर्रूविष्णु, गुरुदेव महेश्वरः ।
गुरू साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ।।

दोहा—गुरु ही ब्रह्मा विष्णु है, गुरु ही शंकर देव ।
गुरु ही साक्षी ब्रह्म है, तव चरणन की सेव ।।

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञान मूर्तिम्,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ।।

दोहा—ब्रह्मानन्द रु ज्ञान वपु, त्रिगुण रहित अविकार ।
नित्य अचल गुरुदेव को, प्रणवों बारम्बार ।।
द्वन्द्वातीत रु ज्ञान निधि, समझायो निज रूप ।
वन्दो उन गुरुदेव को, दिव्य स्वरूप अनूप ।।

सर्वदेवोपासना

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैस्तवै,
वेंदैःसांग पद क्रमोपनिषदै गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो
यस्यान्तं न विदुः सुरासुर गणा देवाय तस्मै नमः ॥

ब्रह्मा वरुण अरु रुद्र मरुतः, इन्द्र वन्दन नित करें,
सामवेद अरु शास्त्र गायन, शुभ ऋचाओं में करें ।
ध्यान स्थित हो उसी में, योगिजन एकाग्र मन,
सुर असुर सयुदाय ध्यावे, उस देव को मेरा नमन ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो,
बौद्धाः बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरतः कर्मेति मीमांसकाः,
सोऽयं नो विदधातु वांछित फलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

शिव उपासक शिव समझ ब्रह्म इति वेदान्ति जन,
बौद्ध बुद्धि की प्रमाणपटु, कर्ता इति नैय्यायिकन ।
जिन देव को नित जैन ध्यावें मीमांसक जिमि कर्म को,
त्रैलोक्यपति धारण करावें, निज इष्ट फल शुभ कर्म को ॥

ईश्वरोपासना

ओ३म् विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुवः ॥१॥ यजु० अ० ३०।मं० ३

हे सवितः देवेश प्रभु ! दुर्गुण व्यसन हर लीजिये ।
कल्याणकारी कर्म गुण, शुभ प्रकृति हमको दीजिये ।।

हिरण्यगर्भं समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाँ कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२।।

हे स्वं प्रकाशक जगत्पति तुम प्रकृति ईश महान हो ।
कल्याणकारी अति सुखद शुभ भक्ति का आह्वान हो ।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्यदेवाः
यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

जो आत्मदा बल का प्रदाता देव सेवन नित करें ।
उस मुक्ति दात्री भक्ति को अपने हृदय में हम धरें ।।३।।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतोवभूव
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

जो प्राणि चेतन अरु अचेतन का बना सर्वेश है ।
रचता चतुष्पद अरु द्विपद, वह भक्ति रूप विशेष है ।।४।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढ़ा येन स्वःस्तभितं येन नाकः
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

जिसने रचा द्यौ भूमि को, शुभ मोक्ष सुखद विमान है ।
अर्चन करें भक्ति सहित, वह ईश परम महान है ।।५।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता वभूव,
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयोरयीणाम् ।।

हे प्रजापति आप ही इस विश्व के आधार हो ।
धनधान्य के स्वामी बने, भक्ति हृदय आगार हो ॥६॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानिविश्वा
यत्रदेवाऽमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

जो वन्धुवत् सुख का प्रदाता सर्वज्ञाता ईश है ।
आपकी शुभ भक्ति धारें, आप विधि गुरू ईश है ॥७॥

अग्नेनय सुपथारााये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

हे अग्निरूप ! जगत्प्रकाशक, शुभमार्ग को दरशाइये ।
कर दूर पाप कुकर्म को शुभ शांति सुख सरसाइये ॥८॥

गायत्री-वन्दना-स्तुतिः

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि
धियो यो नः प्रचोदयात् ।

हे प्राणदाता, दुख विनाशक सुख स्वरूप परमात्मन् ।
जग रचयिता पाप नाशक, दिव्यगुणधिविश्वात्मन् ॥
हे दयानिधि ! बुद्धिदायक, अब शरण में लीजिये ।
ध्यानधर करते नमन सद्बुद्धि हमको दीजिये ॥

—त्रिपाठी

दोहा—पर ब्रह्म व्यापक प्रभू, जन्म रहित गुणखान ।
न्याय करत है शक्ति से, है पवित्र शुभ ज्ञान ॥१॥

निर्गुण रूप चरित गुण, अविनाशी अविकार ।
सर्व देश जगदीश को, प्रणवों बारम्बार ।।२।।

यस्यालीयत शल्क सीम्नि जलधिः पृष्ठे जगन्मण्डलम् ।
दंष्ट्रायां धरणी नखे दितिसुताधीशः पदे रोधसी ।।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो ।
ध्याने विश्वमसावधार्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः ।।

मत्स्यावतार में भगवान के शल्क (पंख) की सीमा में समुद्र समा गया, एवं कूर्मावतार में अपनी पीठ पर समस्त भूमण्डल को रख लिया । वराहावतार में पृथ्वी को दाढ़ों के अग्र भाग पर धारण किया एवं नरसिंहावतार में हिरण्य कशिपु का हृदय नाखूनों से विदीर्ण किया तथा वामनावतार में पृथ्वी मण्डल से लेकर स्वर्ग तक नाप लिया । परशुरामावतार में क्षत्रियों का समूह विनाश किया एवं रामावतार में दशमुख रावण को बाणों से मारा तथा कृष्णावतार में प्रलम्बासुर का हाथों से वध किया । बौद्धावतार में ध्यान में ही सम्पूर्ण विश्व को रख लिया तथा आगे कल्कि अवतार में अधार्मिकों का विनाश तलवार से करेंगे ऐसे किसी इस देव को नमस्कार है ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामाशान्तिरेधि ।

शान्ति रवि नभ शान्ति पृथिवी, शान्ति जल भंडार हो।
शान्ति औषधि अरुवनस्पति, विश्वदेवाः शान्ति हो ॥
शान्ति ब्रह्म शान्ति सर्वे, शान्ति सर्वं प्रकार हो।
शान्ति ही सब ओर सरसे, शान्ति भूयोऽपि वार हो ॥

—त्रिपाठी

प्रथम प्रकरण

मानव जीवन और उसकी सार्थकता

सज्जनो ! आज आपके सम्मुख आत्म एवं मानव कल्याण की भावनाओं से प्रेरित होकर कुछ कहने के लिये प्रस्तुत हुआ हूँ। यह मानव जीवन अनेक पुण्य कृत्यों एवं भगवत्कृपा से ही प्राप्त होता है जैसा कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा है :—

"बड़े भाग मानस तन पावा, सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा"।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पापिन जेहि परलोक संवारा।
ताहि पाय जिन राम न ध्यावा, धिक जीवन जग वादि गवांवा।
नर तन पाय विषय मन देहीं, पलटि सुधाते शठ विष लेहीं ॥

मानव जीवन अत्यन्त ही दुर्लभ एवं अमूल्य है इसकी प्राप्ति के लिये देवगण भी याचना करते हैं। श्रीमद् भागवत में कहा है :—

"दुर्लभो मानुषो देहो देहिनां क्षणभङ्गुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये वैकुण्ठप्रियदर्शनम् ॥

मानव शरीर पाकर ही बड़ी से बड़ी उन्नति की जा सकती है, परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है, जीवन का कल्याण हो सकता है, चिरशांति की प्राप्ति हो सकती है। ऐसे दुर्लभ शरीर को प्राप्त कर जो इसे व्यर्थ ही आहार व्यवहार खेल-कूद में बिता देता है उसे फिर बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ता है। क्योंकि शास्त्रकार कहते हैं :—

आहार निद्राभय मैथुनं च,
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्,
धर्मोहि तेषामधिको विशेषः,
धर्मेणहीनाः पशुभिः समानाः।

अन्य योनियों में आहार, निद्रा, भय, मैथुन क्रियादि मनुष्य योनि के समान ही प्राप्त होता है फिर बिना ज्ञान धर्म के मनुष्य जीवन की क्या विशेषता रही, अर्थात् पशु से भी निकृष्ट है। जीवन के अनेक सुख साधनों को धन वैभव से जुटाया जा सकता है परन्तु हे सत्पुरुषो ! एक बार खोया हुआ मानव जीवन दोबारा किसी भी भौतिक साधन से नहीं पाया जा सकता। मानव जीवन का आधार आयु है यदि हमने जीवन का अमूल्य समय भौतिक साधनों के जुटाने में लगा दिया तो जीवन की सार्थकता नष्ट हो जायेगी। यदि अभी श्वाँस रुक जायें तो फिर कुछ भी न हो सकेगा क्योंकि यह जीवन क्षणभंगुर है। हम नित्यप्रति २४ घण्टे में २१६००

श्वास लेते हैं और जीवनपर्यन्त असंख्य श्वास प्रश्वास चलती रहती हैं। परन्तु विचारिये कि इन खोये हुए क्षणों में कितनी बार ईश्वर आराधना, भगवत् चिंतन करते हैं अर्थात् प्रायः जीवन बहुमूल्य व्यर्थ और व्यसनों में गँवा देते हैं। इस समय मुझे एक दृष्टान्त स्मरण हो आया है, ध्यान से पढ़िये :—

"गंगा नदी के किनारे पर एक गाँव में एक निर्धन किसान रहता था जो खेतीबाड़ी करके जीविका कमाता था। एक बार उसने अपने खेत में ज्वार बोई। जब ज्वार की फसल पकने का समय आया तो उसने वहाँ अपना महरा बना लिया, इसी पर बैठ कर वह उसकी रखवाली करने लगा। पक्षियों को उड़ाने के लिये गंगा के किनारे ईंट के टुकड़े या मिट्टी का अभाव होने से वह चिन्ता करने लगा कि गिल्ला बनाने के लिये कहीं से मिट्टी लाऊँगा। गंगा के किनारे घूमते घामते उसे लाल रंग का एक ढेर सा दिखाई दिया, पास जाकर देखा कि लाल लाल पत्थर के गोल टुकड़े पड़े हैं, उसने उन पत्थर के टुकड़ों को अपनी धोती में बाँध लिया और महरा पर गिल्ला के प्रयोग के लिये ले आया। इस स्थान पर पहिले किसी राजा ने तपस्यादि की थी उसके हीरे, लाल आदि राजा के शरीर छूटने पर वहीं दब गये थे जो कालान्तर में गंगा जल के प्रवाह से दिखाई देने लगे। किसान ने ज्वार की रखवाली करते हुये उन लाल टुकड़ों को

गिल्ले के रूप में प्रयोग करते हुए गंगा जी में फेंक दिया। यह कार्य व्यवहार कई दिन तक निरंतर चलता रहा। किसान की पत्नी अपने पति को भोजन खिलाने के लिये खेत पर आई। उसका बालक भी गोद में था। बालक को महरा के नीचे एक लाल पत्थर जैसा टुकड़ा मिला जिससे वह खेलने लगा। किसान की पत्नी जब चलने लगी तो किसान ने बालक के हाथ से टुकड़ा छीना जिससे बालक रोने लगा तब उसकी पत्नी ने कहा कि इसे क्यों रुलाते हो। मनुष्य अपने बच्चों के खेलने के लिये अनेक खिलौने लाते हैं, तुम इस पत्थर के टुकड़े के पीछे बच्चे को रुला रहे हो। किसान चुप हो गया।

किसान की पत्नी घर पहुँची और गृहकार्य में लग गई। दूसरे दिन घर में नौन (नमक) न होने से वह दूकानदार के यहाँ जाने लगी परन्तु पैसा न होने से वह उस लाल पत्थर को ही दूकानदार के यहाँ ले गई और उसके बदले नमक माँगने लगी। दूकानदार उस लाल के बारे में अनभिज्ञ था। संयोग से एक जौहरी दूकान पर बैठा था उसने उसे ध्यान से देखा और दूकानदार से कहा, लाला जी इस पत्थर को मुझे देदो मैं तुम्हें दो आने देता हूँ तुम इसे नमक दे दो। जौहरी अपने घर पहुँचा और लाल को कसौटी पर परखा, लाल सच्चा था और अमूल्य था, जौहरी ने विचारा कि इसका

मूल्य तो अत्यधिक है, मैं इसका पूरा मूल्य नहीं दे पाऊँगा परन्तु इस लाल का जितना अधिक मूल्य दिया जा सके उतना ही थोड़ा है अतः वह अपने जेवरात, सुवर्ण, चाँदी और नकद धनराशि मजदूरों से लदवाकर उस किसान की पत्नी के घर पहुँचा और कहने लगा, बहिन ! यह धन-दौलत संभालो तुम्हारे उस 'लाल' की कीमत है। किसान की पत्नी चकित होकर बोली, इस धन को लाला जी आप ही अपने घर ले जाओ क्योंकि मेरे पास इसे रखने के लिये घर भी नहीं है। तब लाला ने कुशल कारीगरों के द्वारा एक संगमरमर का सुन्दर भवन भी बनवा दिया और उसमें तिजूरी आदि लगवा कर धन सुरक्षित रखवा दिया तथा किसान की पत्नी को सौंप दिया। दीपावली के दिन किसान की पत्नी ने अनेक व्यंजन, मिष्ठान्न आदि बनाये और अपने पति को भोजन ले जाने की अपेक्षा उसे बुलाने के लिये खेत पर गई। किसान ने देखा आज भोजन नहीं ला रही है, अकेली देखकर कुपित होकर कहा—"आज भोजन लेकर क्यों नहीं आई है।" पत्नी ने निवेदन किया, स्वामी जी ! आज दीवाली है, सभी अपने अपने घर भोजन करते हैं, और परदेश से भी अपने घर आ जाते हैं। चलो, आज घर पर ही खाना खाओ, किसान और कुपित होकर कहने लगा— फसल चिड़ियाँ खा जायेंगी मैं नहीं जाऊँगा। परन्तु विशेष आग्रह पर घर को गया। किसान

की पत्नी अपने पति को नये मकान की ओर ले चली तो वह चकित होकर कहने लगा– 'तू किसके घर ले जा रही है' पत्नी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि यह आपका ही घर है, और सारी सम्पत्ति, वैभव दिखलाया, और कहने लगी यह सब वैभव उस लाल पत्थर के टुकड़े का है जिसे बच्चा रोकर उठा लाया था। इतना सुनते ही किसान पछाड़ खाकर गिर पड़ा और कहने लगा कि हे राम! ऐसे गिल्ले तो मैंने हजारों गोफन में रखकर गंगा जी में फेंक दिये, ऐसा कहते ही वह गंगा जी की ओर भागने लगा और कहने लगा मैं गंगा में गोता लगाकर और लाल लाऊँगा। तब पत्नी ने उसे दृढ़ता से पकड़ते हुए निवेदन किया गंगा में बाढ़ है, अथाह पानी है, तुम डूब जाओगे, अब कहीं मत जाओ। जो शेष बच गया है उसे ही भोगो।

"बीती ताहि बिसारिये, आगे की सुधि लेउ"

यह रहा दृष्टान्त अब सिद्धान्त समझिये। ये हीरा, लाल रूपी अमूल्य श्वास जो बीत गई, उन्हें बीत जाने दो जो शेष हैं उनका मूल्य समझते हुए भगवान के स्मरण, चिंतन, परमार्थ कार्य में लगाओ।

किसी संत ने कहा है:—

"श्वास श्वांस पर ओ३म् कह, वृथा श्वास ना खोय।
ना मालूम या श्वास का, आवन होय न होय॥

सुहृदजनो !

मानव जीवन पाकर सर्वोत्तम सिद्धि के लिये सदा सतत चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि पुरुष की इच्छा सदा सुख प्राप्ति और दु:ख नाश के लिये हुआ करती है और अनन्त सुख की प्राप्ति का नाम ही मोक्ष है परन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है इसे व्यक्त करता हूँ ।

"सत्संगो वासनात्यागो, अध्यात्मविद्या विचारणम् ।
प्राणीमात्र निर्विरोधश्च, मुक्तिद्वारं चतुर्विधम् ।।

अर्थात् मोक्ष के साधन मुख्यत: चार हैं:—(१) सत्सङ्ग (२) सदाचार (३) आध्यात्मिक विद्या (४) प्राणिमात्र में निर्वैर भाव इत्यादि हैं ।

शारीरिक शुद्धि के लिये मानव कर्म इस प्रकार हैं—

"सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवानां अर्चनञ्च,
आतिथ्यं शिवपूजनं, मानव कर्म षष्ठकम् ।

अर्थात् स्नान, सन्ध्या, जप, यज्ञ, देव-पूजन, अतिथि एवं शिव पूजा आदि क्रियायें मानव के कर्म हैं ।

महाराज मनु ने धर्म की व्याख्या इस प्रकार की है—

अहिंसासत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहम् ।
दानं दया दमशान्ति सर्वेंषां धर्मं साधनम् ।।

अर्थात्–(१) मन, वचन और कर्म से हिंसा न करना

(२) झूठ न बोलना (३) चोरी न करना (४) पवित्र रहना (५) इन्द्रियों का दमन करना (६) दान देना (७) दया भाव रखना (८) मन को वश में करना (९) शान्ति धारण करना (१०) प्राणिमात्र में प्रेम भाव रखना, ये सभी मानव धर्म के साधन हैं।

सभी प्राणियों को यथाशीघ्र यथासाध्य भगवत चिंतन में लीन हो जाना चाहिये क्योंकि समय बड़ी तीव्र गति से बीत रहा है। इस समय को तास, चौपड़, खेल तमाशे में न बिताकर सत् शास्त्र पठन और परमार्थ चिंतन में लगाना चाहिये और अभी से इस ओर प्रवृत्त हो जाना चाहिये क्योंकि भर्तृहरि जी ने कहा है :—

"यावत् स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयो नायुषः।
आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः"॥

अर्थात् विवेकी बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि जबतक स्वास्थ्य ठीक है, वृद्धावस्था दूर है इन्द्रियों में साधन-भजन-ध्यान करने की शक्ति है, आयु समाप्त नहीं हुई है तभी तक आत्म कल्याण के लिये महान् प्रयत्न के साथ लग जाना चाहिये अन्यथा यह उक्ति चरितार्थ होगी कि घर में आग लग जाने पर कूआं खोदने से क्या लाभ।

हे भद्र पुरुषो !

अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये देर नहीं करनी चाहिये क्योंकि समय का कोई भरोसा नहीं ।

"क्षण भंगुर जीवन की कलिका,
कल प्रात को जाने खिली न खिली,
मलयाचल की शुचि शीतल मन्द
सुगन्ध समीर चली न चली ।
कलि काल कुठार लिये फिरता,
तन नम्र पै चोट झिली न झिली,
भजले हरि नाम अरी रसने,
जाने अन्त समय तू हिली न हिली ॥

सांसारिक कार्यों से कभी छुटकारा नही मिल पाता इस लिये उन कार्यो से बहिर्मुख होकर कुछ जन कल्याण के कार्य करना ही श्रेयस्कर है । आपके लौकिक कार्यों की पूर्ति तो आपके उत्तराधिकारी पुत्र, पौत्र आदि भी कर सकते हैं परन्तु आपके कल्याण की कमी की पूर्ति संसार के सभी साधन भी मिलकर नहीं कर सकते इसीलिये नीतिकारों ने कहा है—

"कोटिं त्यक्त्वा हरिं स्मरेत्"

अर्थात् करोड़ों कार्यों को त्याग कर भगवान का भजन करना चाहिये । गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं :—
"देह धरे कर यह फल भाई, भजिय राम सब काज विहाई"

ज्ञान विराग भक्ति सुख दैनी, स्वर्ग नरक अपवर्ग न सैनी।
सोई पावन सोई सुभग शरीरा, जेहि तन पाय भजिय रघुवीरा,
सबकर फल रघुपति पद प्रेमा, तेहि विनु को उन पावे क्षेमा।

काम क्रोध मद लोभ सब, तात नरक कर पंथ।
सब परि हरि रघुवीरहि, भजहु कहें सद् ग्रन्थ ॥

द्वितोय प्रकरण

सत्सङ्ग–महिमा

प्रिय सज्जनो ! आपके सम्मुख सत्संग की महिमा पर विचार व्यक्त करता हूँ। अनेक शास्त्रों में, विद्वज्जनों ने सत्सङ्ग की महिमा विशेष रूप से वर्णन की है। श्रीमत् भागवत् में कहा कहा है कि—

"गंगा पापं, शशि तापं, दैन्यं कल्पतरुर्हरेत।
पापं तापं तथा दैन्यं सर्वं साधु-समागमः ॥

अर्थात् गंगा जी पाप को, चन्द्रमा ताप को नष्ट करते हैं और कल्पवृक्ष दीनता को हरता है। परन्तु सन्त समागम पाप ताप और दैन्य (गरीबी) सभी विनष्ट कर देता है। और भी

महानुभावसम्पर्कः कस्य नोन्नतिकारणम्।
अशुचिरपि पयः प्राप्य गङ्गा याति पवित्रताम् ॥

अर्थात् महात्माओं के संग से किसकी उन्नति नहीं होती ?

अर्थात् सभी की उन्नति होती है जैसे अपवित्र जल भी गंगा में मिलकर पवित्र हो जाता है।

भद्र पुरुषो ! सत्सङ्ग की महिमा का गायन करते अनेक ऋषि महर्षि, नीतिकार नहीं अघाते। सत्सङ्ग का स्थान सर्वोपरि माना गया है। देखिये गोस्वामी तुलसीदास जी ने सरल सरस रूप में सत्सङ्ग की महिमा गाई है।

"साधुचरित शुभ सरिस कपासू, निरस विसद गुनमय फल जासू।
मुद मंगलमय सन्त समाजू, जो जग जंगम तीरथ राजू।
रामभक्ति जहँ सुरसरि धारा, सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा।
विधि निषेधमय कलिमल हरनी, करमकथा रविनन्दनि वरनी।
हरिहर कथा विराजति वैनी, सुनत सकल मुद मंगल दैनी।
वटु विश्वास अचल निज धर्मा, तीरथ राज सुमाज सकरमा।
सबहि सुलभ सब दिन सब देशा, सेवत सादर समन कलेसा।
अकथ अलौकिक तीरथ राऊ, देय सद्य फल प्रकट प्रभाऊ।

दोहा—सुनि समझहि जल मुदित मन, मज्जहि अति अनुराग।
लहहि चारिफल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग॥

मज्जन फल पेखिअ ततकाला, काक होय पिक वकउ मराला।
सुनि आचरज करै जनि कोई, सत्सङ्गति महिमा नहीं गोई।
वाल्मीकि नारद घट योनि, निज निज मुखन कहीं निज होनी।
सत्सङ्गति मुद मंगल मूला, सोई फल सिधि सब साधन फूला।

सठ सुधरहि सतसङ्गति पाई, पारस परस कुधातु सुहाई।
बिनु सत्सङ्ग विवेक न होई, राम कृपा बिन सुलभ न सोई।
दोहा—बाल्मीकि गणिका यवन, अजामील जग जान।
साधुसंग प्रभाव सों, पायो पद निर्वान।।

गोस्वामी जी ने सत्सङ्ग की महिमा का प्रभाव कितने अनूठे ढंग से वर्णन किया है, सत्सङ्ग पाकर ही संसार के सभी प्राणियों का उद्धार हुआ है। बिना साधु संगति के कितना ही सम्पन्न और कुलीन परिवार का व्यक्ति क्यों न हो उसका उद्धार सम्भव नहीं है। जप तप नियम दान इत्यादि सभी से ऊँचा स्थान सत्सङ्ग का माना गया है।

सत्सङ्ग के विषय में स्वामी आत्मानन्द जी महाराज अपने विचार निम्न रूप में व्यक्त करते हैं कि:—

"नाग्निर्न सूर्यो न च चन्द्रतारका:,
न भूर्जलं खं श्वसनोऽ थवाङ् मनः।
उपासिता भेदकृतो हरन्त्येधं,
विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्तसेवया ।।११।।

अर्थात् अग्नि, सूर्य चन्द्रमा, तारा पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और वाणी मन इन सब की आराधना करने से पाप नष्ट नहीं होते हैं क्योंकि ये सब भेद ज्ञान करने वाले हैं, किंतु महात्माओं की क्षण मात्र की सच्ची सेवा करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

सत्सङ्ग–ज्ञान

दृष्टान्त सुनियेः—

एक नगर में एक धनाढ्य वैश्य का अनाथ बालक था। उसी नगर में देवयौग से एक परमज्ञानी परमानन्द नामक ऋषि पधारे, नगर का जन समुदाय दर्शनार्थं उमड़ आया वह बालक भी उपस्थित था। उसकी अवस्था ४ वर्ष की थी तथा उसकी प्रतिमा को देखकर ऋषि परमानन्द ने पूछा "यह बालक किसका है ?" ग्रामवासियों की अनुमति से परमानन्द जी उस बालक को हिमालय की पुण्यभूमि में साथ ले गये। बीस वर्ष तक पालन पोषण विद्याध्ययन, वेदान्त विवेचन, करते हुए संसार पूर्ण उन्मुख हो गये। आहार में कन्दमूल फलादि करते थे। २५ वर्ष की अवस्था के उपरान्त उस वैश्य बालक को देशाटन की इच्छा हुई और ऋषि से अनुमति लेकर भ्रमणार्थं वृजमण्डल में आये। किसी ग्राम के बाहर ही उसने एक कुंए से पानी भरते तथा ले जाती हुई कुछ युवतियाँ देखीं। उनके रूप शृंगार को देखकर विस्मित होकर वहाँ से भाग खड़ा हुआ तत्पश्चात् उसे एक बारात आती हुई दिखाई दी। वर का शृंगार तथा बाजे आदि की ध्वनि सुनकर तथा अनेक वाहन देखकर चकित हुआ और एक पण्डित जी से प्रश्न किया ? "केयं वार्ता, कुत्र गच्छति भवान्" पण्डित ने कहा "यह बारात है, विवाह संस्कार के लिये जा रहे हैं,

आप ब्रह्मानन्दी हैं, ये विषयानन्दी होगा। यह सुनकर विषया-नन्द जानने की जिज्ञासा पैदा हुई। गाँव में एक कुए के किनारे पर विश्राम किया, प्रातः शौचादि से निवृत हुए तो ग्राम वासियों ने भोजन के लिये आटा दिया, उसे बनाकर भोजन किया, अन्न की मादकता में कूए के किनारे पर ही सो गये। स्वप्न में जाग्रत के कुछ देखे दृश्य स्फुटित हुए और विषयानन्द का भाव उद्‌भूत हुआ। स्वप्न में ग्रामीणों ने मिलकर निवेदन किया आप हमारे यहाँ उपदेशक के रूप में निवास करें और हमें ज्ञानोपदेश दें। कालान्तर में एक सुकुमारी कन्या के साथ विवाह भी सम्पन्न हुआ। स्वप्नावस्था में ही आप अपनी पत्नी के आभूषणों अंगप्रत्यगों को निहारते हुए उससे कौतूहलमय प्रश्न करने लगे।

इमानि कानि भूषणानि ? कानि अंगानि इमानि ?

पति के इस प्रकार अप्रत्याशित प्रश्नों से चकित पत्नी ने पति के हाथों को हटा दिया जिससे वे स्वप्नावस्था में प्रबलता से उछल पड़े और कूए में गिर गये। गिरने की आवाज सुनकर ग्रामीणजन भागे आये और उन्हें कूए से निकाल कर पूछा "ब्रह्मचारी क्या हुआ, कूए में कैसे गिरे ? स्वप्नावस्था में संसार के व्यूह चक्र में फँस कर श्री परमानन्द के शिष्य ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द ने विषयानन्द की व्याख्या करते हुए कहा—

वैश्य पुत्रो स्वप्ने च,
विवाहादि सुकामिनी
सत्संग ग्रहेत कूपं,
जाग्रतं प्राण नाशकम् ।।

ऐसी व्याख्या करते हुए पुनः ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हेतु हिमालय की पर्वत शृंखलाओं में ईश्वरीय आराधना के लिये चले गये ।

भक्ति प्रकरणम्

सज्जनो ! मोक्ष प्राप्ति के साधनों में सत्संग, सदाचार, आत्मिक ज्ञान और भक्ति का विशेष स्थान है ।

भगवत् भक्ति की व्याख्या इस प्रकार की गई है ।

"सात्वस्मिन्परम प्रेमरूपा अमृतस्त्ररूपा च" ।।

ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम भक्ति है जो अमृत स्वरूप है। "यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति"।

जिस भक्ति को पाकर मनुष्य सिद्ध, अमर और तृप्त हो जाता है ।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने ज्ञान कर्म और योग से बढ़कर भक्ति की महिमा का वर्णन करते हुए कहा हैः—

नर सहस्र में सुनहु पुरारी । कोउ इक होय धर्म व्रत धारी ।
धर्मशील कोटिक में कोई । विषय विमुख विरागरत कोई ।

कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सुकृत कोउ लहई।
ज्ञानवन्त कोटिक मँह कोउ। जीवन मुक्त सुकृत जग सोऊ।
तिन सहस्र मंह सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी।
धरमशील विरक्त अरुज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म परज्ञानी।
सबते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगतिरत गत मद माया।

स्वयं भगवान राम अपने श्रीमुख से कहते हैं:—

पुरुष नपुसंक नारि वा, जीव चराचर कोय।
सर्व भाव भजि कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोय।

अर्थात् हजारों मनुष्यों में कोई धर्मंपरायण होता है। करोड़ों धर्मंपरायणों में से कोई विषयों से विरक्त विरागी होता है। वेद का कथन है कि करोड़ों विरक्तों में से सम्यक् ज्ञान का प्राप्त करने वाला कोई एक होता हैं। और सम्यक् करोड़ों ज्ञानियों में से कोई एक जीवन मुक्त होता है। सहस्रों जीवन मुक्त प्राणियों में कोई एक दुर्लभ ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी होता है परन्तु धर्मंपरायण, विरक्त, ज्ञान जीवन मुक्त और ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी से बढ़कर भगवत् भक्ति में परायण अनन्य भक्त ही मेरा प्रिय है।

श्रीमद् भगवत् गीता में भगवान कृष्ण जी कहते हैं:—

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ़निश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः।

जो तुष्ट नित मन बुद्धि से, मुझ में हुआ आसक्त है।
दृढ़ निश्चयी है संयमी, प्यारा मुझे वह भक्त है॥

"यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।

करता न द्वेष न हर्ष जो, बिन शोक है बिन कामना।
त्यागे शुभाशुभ फल वही है भक्त प्रिय मुझको घना।

महाकवि तुलसीदास जी भक्ति की महिमा कहते नहीं अघाते हैं। श्री राम स्वयं कहते हैं :—

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे, लवण बिना बहु व्यञ्जन जैसे।
भगति हीन विरंचि किन होई, सब जीवों सम प्रियमोहि सोई।
भगतिवन्त अति नीचहु प्राणी, मोहि प्राणप्रिय अस मम वाणी।

श्री तुलसीदास जी कहते हैं कि :—

राम भगति मनि उर वस जाके, दुख लवलेस न सपनेहु ताके।
चतुर शिरोमनि सो जगमाहीं, जे मन लागि सुजतन कराहीं।
भाव सहित खोजहि जे प्राणी, भाव भगति मनि सब सुखखानी।
मोरे मन प्रभु अस विश्वासा, राम से अधिक राम कर दासा।

भगवत् भक्ति का माहात्म्य कितना उच्च स्थान रखता है, यह अनेक ऋषि और आचार्यों से स्वीकार किया गया है, भक्त-प्रहलाद, ध्रुव, अम्बरीश, चन्द्रहास, शबरी, विभीषण, मीरा आदि अनन्य भक्ति अपनाकर भगवदाकार हो गये।

भक्ति के अनेक स्वरूप हैं जिनमें नौ (९) प्रमुख हैं जिन्हें 'नवधाभक्ति' नाम से सभी जानते हैं। जैसा कि कहा है:—

सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ।
द्वितीयं मत्कथालाभस्तृतीयं मद्गुणैरणम् ।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ।
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुध्याऽमायया सदा ।
पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ।
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् ।
मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ।
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मति ।
वांह्यार्थेषु विरागत्वं शमादि सहितं तथा ।
अष्टंम नवमं तत्वविचारो मम भामिनी ।
एवं नव विधाभक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ।
स्त्रियो वा पुरुषष्याऽपि तिर्यंग्योनिगतस्य वा ।
भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे ।।

महात्मा तुलसीदास जी ने भक्ति की व्याख्या 'नवधा भक्ति' नाम से इस प्रकार की है :—

नवधा भक्ति कहौं तोहि पाहीं, सावधान सुन धर मन माँहीं ।
प्रथम भगति सन्तन करि संगा, दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।
गुरु पद पंकज सेव है, तीसरि भगति अमान ।
चौथि भगति मम गुन गन, करहि कपट तजिगान ।।

मंत्र जाप मम दृढ़ विश्वासा, पञ्चम भगति सो वेद प्रकासा।
छट दमशील विरत बहुकर्मा, निरत निरन्तर सज्जन धरमा।
सातवं सम मोहिमय जगदेखा, मोते संत अधिककर लेखा।
आठवं यथा लाभ संतोषा, सपनेहु नहि देखहिं परदोषा।
नवम सरल सब सन छल हीना, मम भरोसहीय हरष न दीना।
नव महुँ एकहु जिनके होई, नारि पुरुष सचराचर कोई।

अर्थात् प्रथम भक्ति संतो का साथ, दूसरी भक्ति भगवान राम की कथा में प्रेम, तीसरी भक्ति गुरु चरणों की सेवा, चौथी भक्ति कपट त्याग कर मेरे गुणों का गान, मन्त्रों का जाप और मुझ में दृढ़ विश्वास पाँचवी भक्ति, छटी भक्ति इन्द्रिय निग्रह, सांसारिक कार्यों से वैराग्य, सप्तमी भक्ति मुझ में ही संसार को देखे, और मुझ से अधिक संतों को पहिचाने, आठवीं भक्ति जो कुछ मिल जाय उसी में संतोष करे और स्वप्न में भी दूसरे के दोषों को नहीं देखे, नवमी भक्ति सरलता के साथ व्यवहार करना, किसी भी अवस्था में हर्ष विषाद को प्राप्त न होना। इन नौ भक्तियों में से जिसके पास एक भी होती है, वह स्त्री, पुरुष, जड़ चेतन कोई भी हो, वह मुझे अत्यन्त ही प्रिय है।

स्वामी आत्मानन्द जी ने भक्ति का माहात्म्य इस प्रकार वर्णन किया है :—

"सत्यादि त्रियुगे बोधो विरागो मुक्ति साधकौ,
कलों तु केवला भक्ति ब्रह्मसायुज्य कारिणी" ॥ 'पद्मपुराणम्'

सतयुग, त्रेता, और द्वापर इन युगों में ज्ञान और वैराग्य मोक्ष के साधन माने गये हैं किंतु कलियुग में केवल भक्ति ही ब्रह्म को प्राप्त करादेने वाली है, अर्थात् मोक्ष का साधन है।

"परमात्मनि परम प्रेमरूपा भक्तिः, सा परानुरक्तिरीश्वरे" "इति शाण्डिल्य सूत्रम्"।

भगवान में जो परम प्रेम करना है अर्थात् मनसा, वाचा, कर्मणा भगवान में तल्लीन रहना ही 'भक्ति' है।

भगवान में किया गया जो सर्वोत्कृष्ट अनुराग है वही 'भक्ति' है।

"द्रुतस्य भगवद्धर्माद्धारावाहिकतां गता, सर्वेशे मनसो वृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते"। "भक्ति रसायने" अपने धार्मिक को भगवान में समर्पण कर देने से द्रवीभूत चित्त की जो धारा प्रवाह (निरंतर) भगवान की भावना होने लगती है उसे भक्ति कहते हैं। 'भक्ति रसायन। भगवान श्री कृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के द्वादश अध्याय में भक्तियोग को विशिष्ट रूप से दर्शाया है। वे प्रारम्भ में अर्जुन को सगुण निर्गुण उपासना के विषय मे उसकी श्रेष्ठता पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं —

"मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धयापरयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

अगुण सगुण मम भक्त हैं निर्गुण कठिन कलेश ।
सब तजि मम आश्रित रहे, उत्तम सगुण विशेष ।।

दोहा—मय्येव मन आधत्स्व मयि वुद्धि निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ।।

मुझ में लगाले मन, मुझी में बुद्धि को रख सब कहीं ।
मुझ में मिलेगा फिर तभी, इसमें कभी संशय नहीं ।।

भक्तों की रक्षा करने के लिये, दुष्टों का संहार करने के लिये भगवान स्वयं अवतरित होते हैं, जैसे उन्होंने गीता में स्वीकार किया है —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहं ।
जब जब धरम नसत है, वाढत असुर अपार ।
जन्म लेत हूँ भूमि पर, दुष्टन के संहार ।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।
साधुन की रक्षा करूँ, दुष्टन कौ संहार ।
धर्म स्थापन के लिये, युग युग में अवतार ।।

गोस्वामी जी कहते हैं —

जब जब होय धरम की हानी, वाढ़हि असुर अधम अभिमानी ।
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा, हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ।।

भगवत भक्ति धारण करने के लिये साधक को प्रारम्भ में निम्नलिखित नियमों का पालन करना चाहिये। ऐसा करने से भक्ति में दृढ़ता आती है।

(१) असत्य, चोरी, हिंसा, व्यभिचार, अभक्ष्यभक्षण बिल्कुल छोड़ देना चाहिये।

(२) दम्भ कभी न करे, भक्त बनने की चेष्टा करे। दिखावट को नहीं।

(३) कामना का त्याग करते हुए, भजन के बदले में कुछ भी न माँगे।

(४) अष्ट मैथुन का त्याग करें, पति पत्नि कम से कम सहवास करें। यदि सहमति से बिल्कुल त्याग करदें तो अत्युत्तम है।

(५) पर पुरुष और पर स्त्री का सदा त्याग करें जहां तक हो एकांत में न मिलें और न बोलें।

(६) रोगी, अपाहिज, अनाथ की तन-मन-धन से सेवा करें।

(७) भगवान्, भगवन्नाम्, भक्त और भक्ति के शास्त्रों में दृढ़ विश्वास और परम श्रद्धा रखें।

(८) दूसरे के धर्म और उपासना का विरोध न करें।

(९) माता पिता स्वामी और गुरूओं की सदा सेवा करें।

(१०) नित्य प्रातः सायं ध्यान या मानसिक पूजा करें और विनय के पद गावें।

(११) कम से कम १५ मिनट घर के सब पारिवारिक जन मिलकर भगवन्नाम कीर्तन करें।

(१२) भगवान की मूर्ति के प्रतिदिन दर्शन करें। यदि जाने का अधिकार हो तो मन्दिर में जाकर अन्यथा घर में मूर्ति स्थापित कर दर्शन करे।

(१३) संसार के पदार्थों मैं भोग दृष्टि से वैराग्य और सब में ईश्वर दृष्टि से प्रेम करने का अभ्यास करें।

(१४) भगवान श्री कृष्ण, श्री राम, श्री नरसिंह आदि का भक्तिभाव से भजन करना चाहिये। पेड़ गिनने वाले की अपेक्षा आम खाने वाला ही लाभ में रहता है। अतः थोड़े और शेष जीवन को असली काम, सच्ची भक्ति में व्यय करना चाहिये।

(भक्ति महिमा के विशेष रूप में दृष्टान्त)

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां, योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजन करते हैं उन मेरे परायण पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

एक ईश्वर भक्त गीताभ्यासी निवृत्ति प्रिय ब्राह्मण थे। वे गीता का नित्य पाठ उपर्युक्त श्लोक का अर्थ समझते हुए किया करते थे। वे भगवान पर ही एक मात्र निर्भर थे। माता पिता परलोक सिधार चुके थे – तीन भाई थे और तीनों विवाहित थे। आप सब में बड़े थे। दोनों छोटे भाई उपरोहति वृत्ति से आजीविका चलाते थे। बड़े भाई आजीविका खान-पान सभी में पूर्णतया भगवान पर ही आश्रित रहते थे। जब भाइयों ने आजीविका के लिये कुछ समय निकालने के लिये कहा तो उन्होंने कहा कि जो सबका भरण पोषण करता है वह ईश्वर ही हमारी आजीविका चलाता है। भगवान के आश्रित का पूरा भार भगवान स्वयं उठाते हैं अतः चिंता नहीं करनी चाहिये। दोनों छोटे भाई इस बात से कुपित हो गये और सभी अलग अलग बटवारा करके रहने लगे। बड़े भाई को इस प्रतिक्रिया से न तो कोई क्षोभ हुआ और न ही उनके कार्य प्रणाली में कोई परिवर्तन ही हुआ। पैतृक सम्पति और पाण्डित्य वृत्ति का शनैः शनैः ह्रास होने लगा। क्योंकि वे इस ओर ध्यान नहीं देते थे सदा भगवत् भक्ति में ही लीन रहते थे। पत्नी बहुत साध्वी थी, संतोषी थी, ब्राह्मण ने पत्नी से कहा, भगवान के दिये हुए पदार्थों पर ही हमें निर्भर रहना चाहिये, किसी से कोई याचना नहीं करनी चाहिये। ब्राह्मण की दैनिक चर्या थी कि

प्रात:काल ४ बजे उठते ही नगर से एक मील दूर एक तालाब के किनारे पहुँच कर शौच स्नानादि करना, फिर संध्यावन्दन के अनन्तर जपध्यान के बाद सम्पूर्ण गीता का भाव सहित अर्थ समझते हुए पाठ करना और ११ बजे घर पहुच कर भोजन करना। भोजन के बाद पुनः उसी क्रम से जप ध्यान स्वाध्याय तालाब पर जाकर करते थे, सन्ध्या आठ बजे लौट कर भोजन, शयन करते थे। यह क्रम चलता ही रहा, धीरे धीरे धन आभूषण (पात्रादि) समाप्त होने लगे। जब पत्नी नम्रता से निवेदन करती, स्वामी जी गहने कपड़े पात्रादि समाप्त हो गये हैं। केवल मकान और आवश्यक पात्र रह गये हैं। ब्राह्मण ने कहा प्रभु की कृपा से बर्तन भांडे मकान तो हैं ही। उसने उसे भी प्रसन्नता से बेच दिया और किराये के मकान में रहने लगे। कुछ समय उपरांत वह धन भी सफाया हो गया, केवल गीता जी की पोथी, एक धोती और एक अंगोछा और पत्नी के लिये एक धोती ही शेष थी। भोजन के लिये अन्न भी नहीं था। जब पत्नी ने इस विषय में विनम्रता से निवेदन किया कि आज कुछ भी शेष नहीं रहा है तो पण्डित जी निरुत्तर होकर सदा की भांति तालाब की ओर चले गये और नित्य की भांति संध्या पूजनादि से निवृत हो जब वे गीता का पाठ करने लगे तब उनके सामने वह अपना इष्ट श्लोक आया, जिसके आधार पर उनकी

भगवान् में अटूट श्रद्धा थी —

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

उस दिन इस श्लोक को पढ़कर पण्डित जी चौंक पड़े और विचार करने लगे, ज्ञात होता है इस श्लोक में भगवान के वचन नहीं हैं, शायद 'क्षेपक' होगा। यदि भगवान का ही कथन होता तो क्या वे मेरी सम्भाल नहीं करते, मेरी सुधि न लेते, क्योंकि मैं तो सर्वथा उन्हीं पर निर्भर हूँ। ऐसा समझकर ब्राह्मण ने उस श्लोक पर हरताल (स्याही) पोत दी और उस श्लोक को छोड़ कर गीता का पाठ करने लगे। ब्राह्मण देवता के हृदय के इस भाव को देखकर अन्तर्यामी भक्त कल्प तरु भगवान तुरन्त एक विद्यार्थी के रूप में घोड़े पर सवार होकर ब्राह्मण के घर उसकी धर्मपत्नी के पास पहुंचे और मिठाई का एक थाल भेंट में रखकर पूंछने लगे, "गुरूजी कहाँ हैं"? ब्राह्मण की पत्नी ने कहा, "वे यहाँ से १ मील दूर एक तालाब के किनारे स्वाध्याय करने जाते हैं। लगभग ११ बजे लौटते हैं उनके आने में एक घण्टे की देर है। आप कौन है ? ये मिठाई किसलिये लाये हैं ?" विद्यार्थी ने उत्तर दिया कि "मैं पण्डित जी का शिष्य हूँ, और यह मिठाई गुरूजी और आपकी सेवा के लिये लाया हूँ, आप इसे रख लें।" ब्राह्मणी ने कहा पण्डित जी का न तो कोई

शिष्य है न बनाते हैं, नाहीं कोई वस्तु किसी की दी हुई ग्रहण करते हैं, इसे आप वापिस ले जायें। विद्यार्थी ने नम्रता से कहा आप जैसा कहती हैं वैसा ही मैं भी मानता हूं कि उन्होंने मेरे सिवाय किसी को शिष्य नहीं बनाया है और न बनायेंगे। मुझ पर उनकी विशेष कृपा है, केवल मैं एक ही उनका शिष्य हूँ। इस पर ब्राह्मणी ने कहा, मैंने तो यह बात कभी नहीं सुनी कि उन्होंने आपको शिष्य बनाया है, फिर मैं इस बात को कैसे मानूं कि आप उनके शिष्य हैं। जो कुछ भी हो आप इस मिठाई को वापिस ले जायें मैं इसे किसी हालत में स्वीकार नहीं कर सकती, विद्यार्थी ने कहा अच्छा यह थाल यहाँ रखा है और मेरा घोड़ा भी बँधा है। मैं लौटकर पण्डित जी से मिललूंगा। ब्राह्मणी के मना करने पर और नाम पता पूछने पर विद्यार्थी थाल को वहीं छोड़कर केवल यह कहकर चला गया कि मैं गुरू जी का वही प्रिय शिष्य हूं, जिसके मुंह पर आज प्रातःकाल उन्होंने हरताल (स्याही) पोती थी वही शिष्य आया था।

एक घण्टे के बाद पण्डित जी वापिस लौटे और घर में प्रवेश करते ही देखा कि थाल मिठाई से भरा रखा है। पण्डित जी कुछ उत्तेजित होकर बोले, "यह मिठाई कहाँ से आई, किसने दी, और क्यों रखी गई ?" ब्राह्मण पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा स्वामिन्! एक विद्यार्थी जो अपने को

आपका प्रिय शिष्य बतलाता था, बलात् इस मिठाई को रख गया है और कहता था कि यह गुरू जी की सेवा के लिये है। मैंने इसे स्वीकार नहीं किया, और मना ही करती रही। मैंने कहा कि उनके कोई शिष्य नहीं है न उन्होंने कोई शिष्य बनाया है इस पर उसने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा, हां मैं मानता हूं कि उनका कोई शिष्य नहीं है केवल मैं ही एक मात्र शिष्य हूँ। मेरे नाम पता पूंछने पर उसने केवल यही कहा कि "मुझको गुरूजी अच्छी प्रकार जानते हैं, उन्होंने आज ही प्रात:काल मेरे मुंह पर हरताल (स्याही) पोती थी। मुझे इतने जल्दी नहीं भूल जायेंगे। ऐसा कहकर पुन: आने की बात कहकर चला गया"।

यह सुनते ही पण्डित जी के रोमाञ्च हो आया वे गद्‌गद होकर बोले 'ब्राह्मणी तुम धन्य हो, अहो भाग्य हो, जो तुमने साक्षात् प्रभु के दर्शन किये, मैं अविश्वासी और हतभागी हूं, इसीलिये उन्होंने मुझे दर्शन नहीं दिये। मैंने एक दिन की भूख न सहन कर अधीर होकर भगवान के वचनों पर हरताल पोत दी। गीता का प्रत्येक वाक्य भगवान के मुख का वचन है। सभी सत्य है। आज मैंने भगवान के वचनों का अविश्वास करते हुए और 'क्षेपक' समझते हुए निम्न श्लोक पर हरताल पोत दी थी —

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युंपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थात् अनन्य भाव से भगवान की शरण रहने वाले नित्य भगवत् चिंतनशील पुरुषों का नित्य निर्वाह भगवान स्वयं करते हैं, इस वाक्य का बार बार चिंतन करते हुए ब्राह्मण को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उसके बाद उनकी दृष्टि बाहर गई तो क्या देखते हैं कि घोड़े पर भार लदा हुआ है. उसे तुरन्त उतार कर अन्दर लाकर देखा कि उसमें लाखों रुपये के रत्न, पन्ना, हीरा जवाहर भरे थे। यह देख कर ब्राह्मण को अपने कृत्य पर अत्यधिक पश्चात्ताप होने लगा और गद्गद् होकर श्रीमद्भागवत् का यह श्लोक गाने लगे —

अहो वंकीयं स्तन कालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम।

आश्चर्य है कि "पापिनी पूतना ने कृष्ण को मारने की इच्छा से विषयुक्त स्तन पिलाया था वह भी माता के योग्य उत्तम गति को प्राप्त हुआ, फिर उन भगवान को छोड़कर हम किस दयालु की शरण में जायें"।

मुझे धिक्कार है कि पतितपावन विश्वम्भर प्रभु पर मैंने झूठा दोष लगाकर अपने को कलंकित किया, मैं अर्थ का ही दास रहा। मेरी निष्कामता में कमी रही इसीलिये भगवान

ने मुझे सन्तुष्ट करने के लिये भोजन, रत्न राशि आदि देकर भुलाया है। ऐसा कहते हुए ब्राह्मण आनन्द विभोर हो गया।

बहुत देर होते देख पत्नी ने निवेदन किया "भगवान का दिया हुआ प्रसाद तो पालें" पण्डित जी बोले "जब भगवान कह गये हैं कि हम आयेंगे तब तो उनके आने पर ही प्रसाद पाऊंगा"। इस प्रकार प्रतीक्षा करते करते सन्ध्या हुई, कुछ रात्रिगत हुई, परन्तु भगवान नहीं आये। सोते समय पत्नी ने पुनः प्रसाद के लिये निवेदन किया परन्तु ब्राह्मण ने प्रसाद नहीं पाया और सो गये। रात के ११ बजे थे। दरवाजा खटखटाते हुए किसी ने बड़े मधुर स्वर में पुकारा गुरुआनी जी ! गुरुआनी जी दरवाजा खोलिये। दोनों जाग रहे थे, आवाज को सुनकर ब्राह्मणी ने पति से कहा "स्वामिन भगवान श्याम सुन्दर आ गये हैं। ब्राह्मण ने तुरन्त दौड़कर दरवाजा खोला और वे भगवान के चरणों पर गिर पड़े। भगवान ने उनको उठाकर अपने हृदय से लगा लिया, उस समय पण्डित जी की बड़ी विचित्र दशा थी, शरीर रोमाञ्चित नेत्रों से अश्रु प्रवाहित, हृदय प्रफुल्लित और वाणी गद्गद् थी फिर वे धैर्य धारण करके बोले, "नाथ ! मैं तो अर्थ का दास हूं, मुझ पामर ने आपको व्यर्थ ही दोष लगाया। मैं आपका भजन तो अवश्य करता था परन्तु उसमें योगक्षेम वहन की कामना अन्तर्निहित थी। आपने मुझ जैसे अभागे

को हर प्रकार की सान्त्वना दी और दर्शन दिये मुझे क्षमा कीजिये। भगवान बोले,"हे तात! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है, तुम तो मुझ पर पूर्ण रूप से निर्भर थे। मेरे आने में जो विलम्ब हुआ वह मेरा स्वाभाविक दोष है, अभी आपने भोजन भी नहीं किया"। ब्राह्मण ने कहा, "आपने आने के लिये कहा था तो भला आपके बिना आये हम भोजन कैसे करते"? भगवान बोले,"चलो हम सब लोग एक साथ भोजन करते हैं"। ब्राह्मण पत्नी ने भगवान का संकेत पाकर दोनों को भोजन कराया, ब्राह्मण पत्नी ने भी प्रसाद पाया। भगवान प्रसन्न होकर बोले तुम्हारे लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं हैं, तुम इच्छित वरदान मांगो, तुम दोनों प्राणियों ने बहुत कष्ट सहन करते हुए मेरे परायण हुए हो। ब्राह्मण बोला आपके दर्शन लाभ से संसार में और कौन सा बड़ा लाभ है? जिसकी मैं याचना करूँ। हे नाथ! मैं यही चाहता हूं कि मेरे मन में योगक्षेम की इच्छा बिल्कुल न रहे और आपके चरणो में अनन्य विशुद्ध प्रेम बना रहे। भगवान तथास्तु कहकर अन्तर्ध्यान हो गये।

इधर ब्राह्मण के दोनों छोटे भाइयों की आर्थिक दशा दिन प्रतिदिन गिरती गई, यहाँ तक कि वे भूखों मरने लगे, कोई उन्हें उधार भी न देता था। बड़े भाई ने दान देना याचकों को धन बाँटना आदि कार्य आरम्भ कर दिये

याचकों की भीड़ रहती । विवश होकर दोनों भाई बड़े भाई के पास गये । परम भक्त पण्डित जी ने भाइयों को देखकर उन्हें हृदय से लगा लिया और कुशल क्षेम पूंछी । उन्होंने उत्तर दिया आप जैसे सत्पुरुषों से अलग होकर हमारी कुशल कहाँ, हम तो मुंह दिखाने के काबिल भी नहीं हैं । बड़े भाई ने कहा,'आपका ही घर है, हम आप अलग अलग थोड़े ही हैं, पहले जैसा प्रेम ही सहोदरों में होना चाहिये' ऐसा कहकर उन्हें अपने घर लिवा लाये और साथ साथ रहने लगे । दोनों छोटे भाइयों पर बड़े भाई के जीवनादर्श का इतना प्रभाव पड़ा कि वे भी गीता के भाव को समझते हुए नित्य प्रति स्वाध्याय करते हुए गीता पाठ करने लगे और थोड़े ही समय में भगवद्भक्ति करते हुए भगवत्कृपा से भगवदाकार हो गये ।

इस दृष्टान्त में निष्काम भक्ति का कितना ऊँचा आदर्श दिखाया गया है । सज्जनों इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं भगवान स्वयं अपने भक्तों की योगक्षेम अर्थात् अप्राप्त की प्राप्ति तथा प्राप्ति की रक्षा करते हैं ।

नाई नन्दा, प्रह्लाद, ध्रुव, शबरी, अमरीश, चन्द्रहास, मीरा, द्रोपदी, सहजोबाई आदि की अनन्य भक्ति के कारण भगवान ने अविलम्ब अनुमम सहायता कर अपने स्वरूप में मिला लिया । यह भक्ति का अमिट प्रभाव है ।

"बोलो भगवान और उसके अनन्य भक्तो की जय ।"

वेदान्त विवेचन

वेदान्त क्या है :—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष एवं छन्द शास्त्र का विधान वेदान्त से सम्बन्धित है। वेदान्त में आत्मा, शरीर एवं माया का विशद विवेचन करते हुये जीव एवं ब्रह्म की एकता का सामञ्जस्य वर्णित किया गया है।

आत्मा क्या है-घनच्छन्नदृष्टिर्घनच्छन्नमर्कं,
यथा मन्यते निष्प्रभंचातिमूढः
तथा बद्धवद्भाति यो मूढदृष्टेः
स नित्योपलब्धिस्वरूपोऽयमात्मा ॥

जिस प्रकार बादल के टुकड़े से छिपे सूर्य को एवं चन्द्र को बादल से छन्न दृष्टि जिस प्रकार बादल से ढका हुआ समझती है उसी प्रकार यह नित्य ज्ञान स्वरूप यह आत्मा पाञ्चभौतिक शरीर से ढका हुआ भासता है।

न जायते म्रियते वा कदाचित्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हन्यते हन्यमाने शरीरे। "गीता"

यह आत्मा न कभी जन्म लेता है तथा न कभी मरता है तथा न कभी हुआ न होगा। यह तो नित्य शाश्वत एवं

पुराण स्वरूप है। यह शरीर के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्,
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति। 'कठोपनिषद्'

शरीर से रहित अनित्य शरीरों में नित्य रूप से अवस्थित महान् विभु व्यापक आत्मा को मान कर धीर पुरुष नाशवान् शरीर का शोक नहीं करते।

आत्मा के विशेषण:—सत्, चित्, आनन्द, ब्रह्म, स्वयं प्रकाश, कूटस्थ, साक्षी, द्रष्टा, उपद्दटा, एक।

अन्त विहीन अखण्ड असङ्गरु अद्विय जन्म विना अविकारे,
चारि अकार विना अरु व्यक्त नमाननुं को विषयोजुनिकारे,
कर्म करीहि वढ़ै न घटै इस हेतु ही अव्यय वेद पुकारे,
अक्षर नाश विना कहिये इस आदि निषेध्य पीताम्बर सारे।

सत् = जिसकी ज्ञान अथवा किसी से भी निवृत्ति न हो उसे सत् कहते हैं।
चित् = अलुप्त प्रकाशवान को चित् कहते हैं।
आनन्द = जो संर्वाधिक प्रियता का विषय है।
ब्रह्म = संसार में उसका रूप व्याप्त है।
स्वयं प्रकाश = जो स्वयमेव प्रकाशमान होते हुये सभी को प्रकाशित करने वाला है।
कूटस्थ = अचल, अक्रिय रूप से स्थित रहता है।

साक्षी = लोक व्यवहार से उदासीन एवं दुःख सुख से रहित हैं ।

द्रष्टा = सांसारिक दृश्यों का देखने वाला है तथा निर्लिप्त है ।

उपदृष्टा = जिस प्रकार यज्ञ में ऋत्विज आदि कार्यकर्ता होते हैं उनको देखने वाला केवल उपदृष्टा होता है तद्वत् उसे जानना ।

एक = आत्मा का कोई सजातीय नहीं इसलिये आत्मा एक है ।

खं वायुमग्निं सलिलं महीं च,
ज्योतींषि सत्वानि दिशो द्रुमादीन् ।
सरित् समुद्रांश्च हरेः शरीरम्,
यत् किञ्च भूतं प्रणमेदनन्यः ।।'श्रीमद्‌भागवतम्'

ज्ञानी व्यक्ति, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, प्राणि, दिशायें, वृक्ष, नदियां, समुद्र सभी को भगवान का शरीर समझकर अनन्य भाव से प्रणाम करता है । आत्मा का स्वरूप न्याय शास्त्रानुसार इस प्रकार है—

ज्ञानाधिकरणमात्मा—सः द्विविधः, जीवात्मा परमात्मा चेति—तत्रेश्वरः सर्वज्ञः परमात्मा एक एव जीवस्तु प्रति शरीरं भिन्नो विभुर्नित्यश्च । ज्ञान का अधिकरण आत्मा है उसके दो भेद हैं । १—जीवात्मा तथा २—परमात्मा । वह परमात्मा

तो सर्वज्ञ एवं एक है तथा जीवात्मा प्रति शरीर में भिन्न होते हुए विभु (व्यापक) एवं नित्य है।

ऋग्वेद में आत्मा की व्यापकता इस प्रकार है—

सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशांगुलम् ॥

उस परब्रह्म परमात्मा के हजारों मस्तक हैं हजारों नेत्र हैं तथा हजारों पैर हैं (यहाँ सहस्र शब्द उपलक्षण मात्र है सहस्र शब्द से असंख्य गणना ली जाती है) यह विराट आत्मा सारे विश्व में व्याप्त होकर भी दश अंगुल विश्व से अधिक बनकर स्थित है। यह विराट विश्व से भी अधिक है।

इस आत्मा की निराकारता एवं साकारता का वर्णन गोस्वामी श्री तुलसीदास जी ने इस प्रकार अपनी मानस रामायण में किया है।

विनुपद चलयि सुनयि विनु काना ।
कर विनु कर्म करयि विधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी ।
विनु वाणी बक्ता बड़ जोगी ॥

यहां विनुपद शब्द निराकार का द्योतक है तथा चलइ शब्द साकार का बोधक है। इसी प्रकार आगे भी जानना चाहिये।

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि ।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान् ॥

महदादि एवं प्रधान (प्रकृति) त्रिगुणात्मिका है, अविवेकी है तथा सभी का विषय है सामान्य एवं अचेतन है तथा प्रसवधर्म वाली है इसके विपरीत पुमान् विराट पुरुष को समझना चाहिये पुरुष, अत्रिगुण, विवेकी, अविषय, असामान्य चेतन एवं अप्रसवधर्मि है इस प्रकार पुरुष (आत्मा) को समझना चाहिये ।

उस परमात्मा की अनुपलब्धि क्यों है अर्थात् उस का दर्शन क्यों नहीं होता इसका सांख्य शास्त्र में इस प्रकार वर्णन किया है :—

अतिदूरात् सामीप्यात् इन्द्रियघातात् मनोनवस्थानात्
सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः

अति दूर होने पर किसी वस्तु का ज्ञान नहीं होता जिस प्रकार दो कोस पर रखी चीज को हम नहीं देख पाते, अति सामीप्य होने पर भी वस्तु ज्ञान नहीं होता, जिस प्रकार आँखों में लगा काजल दृष्टिगोचर नहीं होता तथा इन्द्रिय विनाश होने पर तद्विषयक वस्तु ज्ञान नहीं होता, जिस प्रकार आँखों में बाधा आने पर रूप नहीं दिखाई देता । मन की अनवस्था होने पर भी वस्तु ज्ञान नहीं होता तथा अत्यन्त सूक्ष्म वस्तु का ज्ञान भी नेत्र नहीं कर पाते, जिस प्रकार

परमाणु को नहीं देखा जा सकता, इसी प्रकार आत्मा का ज्ञान नहीं हो पाता। इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि आत्मा नहीं है क्योंकि महदादि कार्यों से उसकी स्थिति स्पष्ट है। महदादि से इन्हें समझना चाहिये (महत् बुद्धि, अहङ्कार, पञ्चतन्मात्रा, पञ्चज्ञानेन्द्रियां, पञ्चकर्मेन्द्रियां, पञ्चमहाभूत) इन तेईस तत्वों का नाम महदादि है।

आत्मा का विनाश सर्वथा असम्भव है। इसका प्रमाण गीता में इस प्रकार मिलता है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽक्लेद्योऽशोष्य एव च।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः॥

इस आत्मा को शस्त्र छेदन नहीं कर सकते अग्नि जला नहीं सकती, जल इसे गला नहीं सकता, यह आत्मा न गलने वाला, न जलने वाला, न कटने वाला और न सूखने वाला है यह नित्य एवं सर्वव्यापी तथा स्थाणु एवं अचल है यह सनातन है (सदा भवः) सदा वर्तमान रहने वाला है।

जीवात्मा का वर्णन इस प्रकार है—

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुख राशी॥

जीव अनन्त एक श्रीकन्ता ।
परवश जीव स्ववश भगवन्ता ॥

ईश्वर के ही अंश को जीव कहते हैं, यह अविनाशी है, चेतन है, निर्मल है एवं सुख स्वरूप है। जीव अनन्त है तथा परब्रह्म एक है, जीव परवश है तथा भगवान स्वतन्त्र है।

ईश्वर एवं जीव के ८–८ धर्म कहे गये हैं।

ईश्वर के ८ धर्म इस प्रकार है—

(१) सर्वशक्तित्व (२) सर्वज्ञत्व (३) व्यापकता (४) एकत्व (५) स्वाधीनत्व (६) सामर्थ्यवत्ता (७) परोक्षता (८) मायोपाधित्व।

जीव के भी ८ धर्म है—

(१) अल्प शक्तित्व (२) अल्पज्ञता (३) परिच्छिन्नता (४) अनेकता (५) पराधीनता (६) असमर्थता (७) अपरोक्षता (८) अविज्ञोपाधित्व।

इस प्रकार १६ धर्मों के ज्ञानोपरान्त इनका त्याग करने पर मोक्ष सर्वथा सम्भव है।

ईश्वर जीव भेद मिट जावे।
तुर्यावस्था सोइ कहावे ॥
जीव ईश में भेद किं, इतनो कहैं अजीव।
वद्ध दशा में जीव है, मोक्ष दशा में सीव ॥

आत्मा के विषय को लेकर जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य नें अपनी तत्व बोध नामक पुस्तक में लिखा है।

आत्मा कः ? स्थूल सूक्ष्म कारण शरीराद्यतिरिक्तः पञ्च-कोशातीतः सन्नवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानन्दस्वरूपः सन् यस्तिष्ठति स आत्मा ॥

आत्मा किसे कहते हैं, स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से अतिरिक्त तथा अन्नमयादिपांच कोशों से दूर, जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं का साक्षी होकर जो सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप होकर स्थित है। वह आत्मा है।

अब शरीर का विवरण करते हैं।

शरीर को वेदान्त में ३ प्रकार का कहा है।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर

स्थूल शरीरः—स्थूल शरीरं किम् ? पञ्चीकृत पञ्च-महाभूतैः कृतं सत्कर्म जन्य सुख दुःखादिभोगायतनं शरीरम्। अस्ति, जायते, वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते, विनश्यतीति षड् विकारवदेतत्स्थूल शरीरम् ॥ ॥ "तत्व बोधः" ॥

पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश इन पाँचों का आधा-आधा भाग अलग रखकर शेष प्रत्येक आधे के चार भाग कर अपने आधे को छोड़ चारों में क्रमशः मिलाने पर पञ्चीकरण होता है) (पृथ्वी का आधा भाग एवं

अन्य चारों का १/८ भाग यानी २-२ आने भर मिलने पर पृथ्वी तत्व से मिश्रित भौतिक देह बनती है। इसी क्रम से अन्य तत्वों को भी समझना) से किया गया कर्मों से उत्पन्न सुख दु:खादि के भोग का आयतन यह शरीर है। यह शरीर पैदा होता है, बढ़ता है, बदलता है, क्षय होता है विनाश को प्राप्त होता है इन छ विकारों से युक्त यह स्थूल शरीर कहाता है।

पञ्चीकृत पञ्चभूत के पच्चीस तत्वन को,
स्थूल देह एह भोग आयतन मानिये, "विचार चन्द्रोदय"

सूक्ष्म शरीर का विवरण—

सूक्ष्म शरीरं किम् ? अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतैः कृतं तत्कर्म जन्य सुख दु:खादि–भोग साधनं पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चकर्मेन्द्रियाणि, पञ्चप्राणाः मन श्चैकं बुद्धिश्चैका–एवं सप्तदश कलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्म शरीरम्।

अपञ्चीकृतभूतके सप्तदश (१७) तत्वन को,
सूक्ष्म देह होइ भोग साधन–प्रमानिये॥

ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच हैं–श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, नासिका ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं।

श्रोत्र का देवता दिशा, त्वचा का वायु, चक्षुका सूर्य जिह्वा का वरुण, नासिका का देवता अश्विनी कुमार हैं। श्रोत्र का विषय शब्दग्रहण, त्वचा का विषय स्पर्श करना, चक्षु का विषय रूप ग्रहण एवं रसना का विषय रस ग्रहण

करना है । तथा नासिका गन्ध का ग्रहण करती है ।

कर्मेन्द्रियाँ भी पाँच हैं—

वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ है । वाक् (वाणी) का देवता अग्नि है । पाणि (हाथ) का देवता इन्द्र है । पाद (पैरों) का देवता विष्णु है । तथा पायु (गुदा) का देवता मृत्यु है तथा उपस्थ (लिङ्ग) का देवता प्रजापति है । वाणी का विषय भाषण करना, हाथों का विषय ग्रहण करना, पैरों का विषय गमन करना तथा गुदा का विषय मल त्याग एवं उपस्थ लिङ्ग का विषय आनन्द है ।

कारण शरीर क्या है ?

कारण शरीरं किम् ? अनिर्वाच्यानाद्यविद्यारूपं शरीर द्वय कारणमात्रं सत्स्वरूपा ज्ञानं निर्विकल्पकरूपं यदस्ति तत्कारण शरीरम् । अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल और सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है, जो सत्स्वरूप अज्ञान है और जिसमें किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारण शरीर कहते हैं । सारांशतः यह मायिक शरीर है । जिसका नाश ब्रह्म ज्ञान होने पर हो जाता है ।

प्राण (वायु) विवरण–प्राण पाँच हैं । प्राण वायु, अपान वायु उदान वायु, व्यान वायु, समान वायु किन्हीं के मत-अनुसार पाँच वायु और कही गई हैं उनके नाम और स्थान इस प्रकार हैं—

दसो पवन है यहि तनुमाहीं ।
निज-निज थल में सोउ रहाहीं ।
प्राण पवन हिरदय में वासा ।
जेहितें निशि दिन निकसत श्वासा ।
गुदा अपान नाभि समाना ।
कण्ठ उदान सर्व तनु व्याना ।
नाग वायु ते उठै डकारै ।
कूरम नैनन पलक उघारै ।
देवदत्त आवै जमुहाई ।
किरकिल छींक लगावै भाई ।
मुये धनंजय देह फुलावै ।
ये दस पौन शरीर रहावे ॥

—विश्राम सागर

शरीरावस्था विवेचन :—

अवस्थाएं तीन होती है—(१) जाग्रत अवस्था (२) स्वप्न अवस्था (३) सुषुप्ति अवस्था

जाग्रतावस्था किसे कहते हैं—

श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ जब अपने विषय का ज्ञान रखती है उसे ही जाग्रतावस्था कहते हैं । "स्थूल शरीर मेरा है" यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है ।

स्वप्नावस्था किसे कहते हैं ?

जागते हुये जो कुछ देखा और जाना जाता है उससे जो प्रपञ्च प्रतीत होता है निद्रा आ जाने पर इसी वासना प्रपञ्च के प्रभाव से जो सांसारिक दृश्य दिखलाई पड़ते हैं उसी का नाम स्वप्नावस्था है। सूक्ष्म शरीराभिमानी आत्मा तैजस कहलाता है।

सुषुप्त्यवस्था क्या है—

मैं कुछ भी नहीं जानता, मैंने बड़े सुख से निद्रा ली है यह ज्ञान जिस अवस्था में होता है उस अवस्था का नाम सुषुप्ति है। कारण शरीर का अभिमानी आत्मा प्राज्ञ कहाता है।

कोशों की संख्या ५ कही गई है।

(१) अन्नमय, (२) प्राणमय, (३) मनोमय, (४) विज्ञानमय, (५) आनन्दमय।

अन्नमय कोश:—जो अन्नरस से उत्पन्न होकर अन्नरस से ही वृद्धि को प्राप्त कर अन्न रूप पृथ्वी में विलीन हो जाता है उसे अन्नमय कोश कहते हैं। प्राणमय:—प्राणादि पाँच वायुओं को एवं वाणी आदि पाँच कर्मेन्द्रियों को प्राणमय कोश कहते हैं। मनोमय:—मन एवं पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को मिला कर मनोमय कोश बनता है।

विज्ञानमय:—बुद्धि एवं पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से विज्ञानमय कोश होता है।

आनन्दमय कोशः—कारण शरीररूप अविद्या में रहने वाला रज और तम गुण के संयोग से मलिन और प्रिय तथा मोद आदि वृत्तियों वाला जो कोश है उसे आनन्दमय कोश कहते है।

जहाँ अहं एवं मम भाव रहता है वहाँ तक आत्मा पञ्च कोशों से अलग नहीं हैं। नाश होने पर पञ्चकोशों से परे है। पञ्च कोश माया के खिलवाड़ मात्र हैं, आत्मा केवल साक्षी है।

मन क्या है—

"मननात्मनः" सांसारिक विषयों का मनन करना ही मन का प्रधान लक्षण है। श्री रघुनाथ दास जी ने मन की व्युत्पत्ति निम्नलिखित प्रकार से की हैं—"दुख सुख भय संकल्प विकल्पा, लाज उच्चाटन मन वृति थल्पा।

सतरज तम बुधि चित अहं शब्द स्पर्श रूप।
रसन गन्ध मिलि गाँठपरि तब उष्ज्योमनुभूप।

बुद्धि—

बुद्धि किसे कहते हैं—"निश्चयात्मिका बुद्धिः" प्रत्येक विचार का निश्चय करना ही बुद्धि है।

चित्त क्या है? "चिन्तयतीति चित्तम्" चिन्तन करना ही जिसका कार्य है उसे चित्त कहते हैं।

सुरति चपलता अगिन उमंगा, राग आदि चित वृत्ति प्रसंगा,

अहंकार—

"मैं तै मान मलिनता दोषा, अहंकार की विरति सरोषा।
इन्द्रियों के देव कौन हैं ?"

मन के देव चन्द्र बुद्धि ब्रह्मा वासुदेव चित केरे।
अहंकार शिव, दिशा करण के नयनभानु, सुरहेरे ॥
रसना वरुण, त्वचा के मारुत नासा आश्वनि जानो।
मुख के अगिनि इन्द्र हाथन के देव, गुदा यम जानो।
लिङ्ग देव प्रजापति स्रजत चरणन विष्णु विराजैं।
चौदह देव रहत यही तनु संग नित निर्भय होय गाजैं।

माया किसे कहते है ?

अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्ति,
रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया,
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते ॥

अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणमयी अनादि अविद्या, परमेश्वर की पराशक्ति को ही माया कहते हैं। जिससे यह सारा जगत उत्पन्न हुआ है। जो सतसत् रूप, भिन्नाभिन्न और सांगानंग उभयात्मिका अद्‌भुत् और अनिर्वचनीयरूपा है। उसे माया कहते हैं।

श्री ब्रह्मानन्द जी ने माया का रूप निम्न भाँति व्यक्त किया है—

वन्ध और मोक्ष में कल्पित,
अनहुई सत्य सी भासूं ।
सो ब्रह्मानन्द मैं झूठी सी,
बादर फार देती हूं ।।
यह कैसा रूप है मेरा,
मैं जग को मोह लेती हूँ ।।

महात्मा कबीर दास जी माया का विशेष तिरस्कार करते हुए कहते हैं :—

"माया महा ठगिनि हम जानी,
तिरगुन फाँस लिये जग डोले,
बोले मधुरे वानी ।।"

गोस्वामी तुलसीदास जी माया का विवेचन करते हुए कहते हैं :—

गो गोचर जँह लगि मन जाई सो सब माया जानौ भाई ।
मैं और मोर तोर तें माया, जेहि बस कीन्हें जगत् निकाया ।।

माया के विषय में निम्न दोहे भी देखिये—

सो शरीर अनित्य है नित्य आत्मा ब्रह्म ।
तू ताही को अंश है, भूलो द्वै के भर्म ।।१।।
जैसे मन्दिर काँच के, जात भयो कोई श्वान ।
आपन छाँही देखिके, भूँकत भो हैरान ।।२।।

तेरे ही अज्ञान ते दूजो भासत आय ।
ज्यों विच फूटी आरसी, मुख बहु परत लखाय ॥३॥
ताते तू ही एक है नित्य अखण्ड अनूप ।
जीव ग्रन्थि को छाड़िकैं, लखौ आपना रूप ॥४॥

माया ग्रसित जीव लक्षण श्री रघुनाथ दास जी के शब्दों में देखिये—

काम क्रोध मद मोह भय, राग द्वेष अभिमान ।
मैं तैं हिंसा शोक श्रम, जीव लक्ष परमान ॥१॥
जब तक इनके वश रहे, गाये गो मन नाँहि ।
तब तक सपनेहू ना मिलैं, निज स्वरूप के माँहि ॥२॥
ज्ञान भानु हरि भक्ति चख, कर्म मुकुर लै हाथ ।
देखि परै निज रूप तब, कहत दास रघुनाथ ॥३॥

आत्म कल्याण के उपाय—श्री भोले बाबा के मतानुसार देखिये —

नहि शत्रु जिसका कोय है, नहिं मित्र जिसका कोय है ।
स्वस्वभाव के अनुसार सब, व्यवहार जिसका होय है,
बाहर सभी करता रहे. है चित्त से सब हट गया ।
मनस्वस्थ निर्मल शांत है, संसार से सो छुट गया ॥१॥
यह पुरुष है यह नारि है, ऐसा जिसे नहिं ध्यान है;
सम हानि है सम लाभ है, सम मान अरु अपमान है ।
मैं अन्य हूं यह अन्य हैं, यह भेद जिसका मिट गया,
'भोला' वही हुशियार है, संसार से सो छुट गया ॥२॥

नहिं राग करता भोग में, नहि द्वेष करता भोग से,
नहि पास जाता योग के, नहिं दूर रहता योग से।
नहिं इन्द्रियाँ होतीं विकल, नहिं रक्त है न विरक्त है,
है तृप्त अपने आपमें, सो प्राज्ञ जीवन मुक्त है ।।३।।
निंदा प्रशंसा से रहित, सम सम्पदा सम आपदा,
देता नहीं लेता नहीं, सम चित्त निर्भय सर्वदा।
जिसको विषम भासे नहीं, सर्वत्र समता युक्त है,
मन अमन बालक सा चलन, सो प्राज्ञ जीवन मुक्त है !।४।।
वर्षों तलक लाखों भले ही, शास्त्र तू सुनता रहे,
पढ़ता रहे या रात दिन, उपदेश भी करता रहे।
जब तक बना है भेद 'मैं तू'. भय न तब तक जायगा,
जब भेद सब मिट जायेगा, तब शाँति अक्षय पायेगा ।।५।।
सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।
सभी सुखी हों जग के प्राणी, सभी रोग निश्शेष हों।
सभी ओर शान्ति सुख सरसें, नहीं दुःख लवलेश हो।

प्रश्नोत्तरी सिन्धु (पद्यानुवाद)—

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य द्वारा रचित प्रश्नोत्तर मणिमाला का प्रतिश्लोकी पद्यानुवाद सुन्दर दोहों में

[अनुवादक—पं सतानन्द त्रिपाठी" शास्त्री"
श्री भीष्म ज्यो० कार्यालय, बरवाना–अलीगढ़. उत्तर प्रदेश]

श्लोक– अपार संसार समुद्र मध्ये,
सम्मज्जतो में शंरणं किमस्ति ।
गुरो कृपालो कृपया वदैत—
द्विश्वेषपादाम्बुज दीर्घं नौका ॥१॥

दो० जग समुद्र अति घोर है डूबन को आधार ।
गुरु कृपालु बतलाइये, हरि-पद-पोत निहार ॥

श्लोक– बद्धो हि को यो विषयानुरागी,
कावा विमुक्ति विषये विरक्तिः ।
को वास्ति घोर नरकः स्वदेहः ।
स्वर्ग पदं किमस्ति तृष्णाक्षय ॥२॥

बन्धन में जन कौन जो, विषयों में आसक्त
बन्धन से को छुट गया, हुआ विषय उन्मुक्त
घोर नरक कि जगत में भजन बिना निजदेह ।
तीन एषिणा त्याग जब, स्वर्ग सौख्य है येह ॥

श्लोक– संसार हृत्कः श्रुति जात्म बोधः
को मोक्ष हेतु कथित स एव ।
द्वारं किमेकं नरकस्य नारी ,
का स्वर्गदा प्राणभृतामहिंसा ॥३॥

जगत मिटावन कौन है, पायो आतम ज्ञान ।
भोक्षा-हेतु सोइ जानिये, वरणत इमि विद्वान् ।
नरक-द्वार सो कौन है, मन में समझो नारि ।
स्वर्ग प्रदाता कौन है, प्राणमहिंसा प्यार ॥

श्लोक– शेते सुखं कस्तु समाधिनिष्ठो
जागर्ति को वा सदसद्विवेकी ।
के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि
तान्येव मित्राणि जितानि यानि ।।४।।

सोवत सुख से कौन है, ब्रह्म निष्ठ पहिचान ।
जागत जग में कौन जो, सत अरु असत पिछान

अपने शत्रु कौन हैं, निज इन्द्रिय को मान ।
वही हमारी मित्रवत्, वशीभूत जब जान ।

श्लोक– को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः
श्रीमांश्च को यस्य समस्त तोषः ।
जीवनमृतः कस्तु निरुद्यमो यः
किं वामृतं स्यात्सुखदा निराशा ।।५।।

कहत दरिद्री कौन से, अति तृष्णा की चाह ।
श्रीमान को जगत में, मन सन्तोष उछाह ।।
जीवित को नर मृतक सम, उद्यम करें न जोय ।
त्याग फलेच्छा हरिहि भज, सुखी समझ जग सोय ।।

श्लोक– पाशो हि को यो ममताभिमानः
सम्मोहयत्वेव सुखे का स्त्रो ।
को वा महान्धो मदनातुरो यो
मृत्युश्च को वापयशः स्वकीयम् ।।६।।

फाँसी किसको कहत हैं, वश ममता अभिमान
कौन सुरा सम मोहती, नारी को पहचान।
महा अन्ध नर कौन जग, काम विवश जो होय।
मृत्यु किसकी हो गई, जीवित निज यश खोय।

श्लोक– को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा
शिष्यस्तु को यो गुरु भक्त एव
को दीर्घं रोगो भव एव साधो
किभौषधं तस्य विचार एव ॥७॥

गुरु कौन जग, श्रेष्ठ जो, भव से कर दे पार।
शिष्य कौन है श्रेष्ठतम, गुरू-वचन उर धार
रोग बड़ो है कौन सो, समझो यह संसार।
औषधि ताकी कौनसी निशिदिन करो विचार॥

श्लोक– किं भूषणाद्भूषणामस्ति शीलं
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।
किमत्र हेयं कनकं च कान्ता।
श्राव्यं सदा किं गुरु वेद वाक्यम् ॥८॥

भूषण श्रेष्ठ सु कौन है शान्ति शील सन्तोष।
धारण नर नारी करैं, सुन्दर सुख मय कोष॥
उत्तम तीरथ कौन सो, निज मन होवे शुद्ध।
सत्संगति हरि भजन में, होत बुद्धि नित शुद्ध॥
त्यागन योग्य सु कौन जग, कंचन कान्ता-जान।
गुरु-वेद के वाक्य को, श्राव्य श्रेष्ठतम मान॥

श्लोक– के हेतवो ब्रह्मगतेस्तु सन्ति ।
सत्सगतिर्दान विचारतोषाः ।
के सन्ति सन्तोऽखिलवीतरागा
अपास्तमोहा शिवतत्त्वनिष्ठाः ॥९॥

ब्रह्म मिलन को साधन, दान तोष सत्संग ।
मनन विचार जो करत है, यही ब्रह्म को अङ्ग ॥
कहत महात्मा कौन से, आसक्ति सब नष्ट ।
अहंता ममता छोड़के, होय ब्रह्म में निष्ठ ।

श्लोक– को वा ज्वरः प्राणभृतां हि चिन्ता
मूर्खोऽस्ति को यस्तु विवेक हीनः ।
कार्या प्रिया का शिव विष्णुभक्तिः ।
किं जीवनं दोष विवर्जितं यत् ॥१०॥

ज्वरवत्पीड़ा कौन है, निशि दिन चिन्ता आग ।
महामूर्ख जग कौन है, दीनी विद्या त्याग ।
कर्म पियारा कौन सा, विष्णु शिव पद भक्ति ।
गुरु सन्त को पूजना, यही धर्म की शक्ति ॥
जीवन श्रेष्ठ सु कौन है, पाप लिप्त नहिं होय ।
ऐसी करनी करि चलो, पीछे हंसै न कोय ॥

श्लोक– विद्या हि का ब्रह्मगतिप्रदा या
बोधो हि को यस्तु विमुक्ति हेतुः ।
को लाभ आत्मावगमो हि यो वै
जितं जगत्केन मनो हि येन ॥११॥

विद्या श्रेष्ठ सु कौन सो, निज स्वरूप पहिचानि ।
लाभ यही है जगत में नहिं जाना सो हानि ।
किसने जीता जगत को, मन जीता तिन जान ।
ब्रह्म-रूप-मय हो गया पायो पद निर्वान ॥

श्लोक— शूरान्महाशूरतमोऽस्ति को वा
मनोज वाणैर्व्यथितो न यस्तु ।
प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा
प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षै ॥१२॥

प्रबल वीर जग कौन जेहिं, काम वाण नहिं लागि ।
धीर वीर समेत को, नारि नयन नहिं दागि ॥

श्लोक— विषाद्विषं किं विषयाः समस्ता
दुःखी सदा को विषयानुरागी ।
धन्योऽस्ति को यस्तु परोपकारी
कः पूजनीयः शिवतत्त्वनिष्ठः ॥१३॥

विष से बड़ विष कौन है, सब विषयन की आग ।
दुखी सदा को रहतु है, विषयों में अनुराग ॥
पूजनीय जग कौन है, शिव तत्त्वन में निष्ठ ।
धन्य पुरुष जग कौन जेहि, परमारथ है इष्ट ॥

श्लोक— सर्वास्ववस्थास्वपि किन्न कार्यं ।
किं वा विधेयं विदुषा प्रयत्नात् ।
स्नेह च पापं पठनं च धर्मं
संसार मूल हि किमस्ति चिन्ता ॥१४॥

कान करै सब उमरि में, मोह पाप से नेह ।
शास्त्र पठन शुभ आचरण, करै नित्य सस्नेह ।।
जगत्मूल सो कौन है, चिन्तन जग को जान ।
चिन्ता बड़ी वलिष्ठ है, धरो प्रभू को ध्यान ।।

श्लोक– विज्ञान्महा विज्ञतमोऽस्ति को वा
नार्या पिशाच्या न च वंचितो यः ।
का श्रृंखला प्राणभृतां हि नारी
दिव्यं व्रतं किं च समस्त दैन्यम् ।।१५ ।।

महा विवेकी कौन जो, नारी से बच जाय ।
सब प्राणिन की श्रृंखला, नारी में बंध जाय ।।
उत्तम व्रत जग कौन है, सविनय भाव सुभाय ।
आवत हि आदर करै, शिष्टाचार दृढ़ाय ।।

श्लोक– ज्ञातुं न शक्यं च किमस्ति सर्वै
र्योषित्न्नो यच्चरितं तदीयम् ।
का दुस्त्यजा सर्वं जनैर्दुराशा
विद्याविहीनः पशुरस्ति को वा ।।१६।।

कठिन क्या है समझना, तिय-मन-चरितहि जान ।
दुस्तर त्याज्य सु कौन है, पाप विषय की बान ।।
सबसे बड़ा पशु कौन जो सद् विद्या से हीन ।
मानुष तन जग पायकर, विषयों में मन लीन ।।

श्लोक— वासो न सङ्ग सह कैर्विधेयो
मूर्खैश्च नीचैश्च खलैश्च पापैः ।
मुमुक्षणा किं त्वरितं विधेयं
सत्संगतिर्निर्ममतेशभक्तिः ॥१७॥

संगति करै न कौन की, पाप मूढ़, खल, नीच ।
इनकी संगति जो करै, अवसि पाय फल-नीच ॥
मुमुक्षु किं कर्त्तव्य है, सत्संगति हरि भक्ति ।
निज स्वरूप को जानले, निर्मम रहे विरक्त ॥

श्लोक— लघुत्वमूलं :च किमर्थितैव
गुरुत्वमूलं :यदयाचनं च ।
जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म ।
को वा मृतो यस्य पुनर्न मृत्युः ॥१८॥

तघुतापन किं मूल है, माँगे हाथ पसार ।
गुरुता उसमें समझिये, माँगे किसी न द्वार ॥
जनम सराहिये कौन का, जिसका जन्म न होय ।
मृत्यु प्रशंसित है वही, पुनः मृत्यु नहिं होय ॥

श्लोक— मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा
वक्तुं न युक्तं समये समर्थः ।
तथ्यं सुपथ्यं न श्रृणोति वाक्यं
विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी ॥१९॥

मूक बधिर जग कौन जो, सुने न हित की बात ।
यथा समय नहिं बोलता, वह पीछे पछतात ॥

करै साख नहिं कौन की, जग में नारी जान ।
ऋषि नृप तक चक्कर पड़े, जिन नारी पतियान ॥

श्लोक— तत्वं किमेकं शिवमद्वितीयं
किमुत्तमं सच्चरितं यदस्ति ।
त्याज्यं सुखं किं स्त्रियमेय सम्य-
ग्देयं परं किं त्वभयं सदैव ॥२०॥

एक तत्त्व सो कौन है, शिव अद्वैत महान ।
सबसे उत्तम कौन जग, श्रेष्ठाचरण बखान ॥
त्यागन को सुख कौन सा, स्त्री सुख को जान ।
सबसे उत्तम दान क्या, अभयदान का दान ।

श्लोक— शत्रोर्महाशत्रुतमोऽस्ति को वा
कामः सकोपानृतलोभतृष्णः ।
न पूर्यते को विषयैः स एव
किं दुःख मूलं ममताभिधानम् ॥२१॥

शत्रु प्रबलतम कौन है, काम क्रोध मद लोभ ।
तृष्णा पूरित विषयरत, अरु निज मन का क्षोभ ॥
विष-विषयों से तृप्त नहिं, काम बड़ा बलवान ।
दुःख मूलं किं जानिये, ममता-दोष पिछान ॥

श्लोक— किं मण्डनं साक्षरता मुखस्य
सत्यं च किं भूतहितं सदैव ।
किं कर्म कृत्वा न हि शोचनीयं
कामारि कंसारि समर्चनाख्यम् ॥२२॥

मुख का भूषण कौन है, विद्वत्ता को जान।
सत्य कर्म है कौन सा, जिव-रक्षा पहचान॥
कौन कर्म के करन से शोच कबहु नहिं होय।
शङ्कर कृष्ण चरित्र पढ़ि पाप लिप्त जनि होय॥

श्लोक— कस्यास्ति नाशे मनसो हि मोक्षः
क्व सर्वथा नास्ति भयं विमुक्तौ।
शल्यं परं किं निज मूर्खतैव
के के ह्युपास्या गुरु देव वृद्धाः ॥२३॥

किसके मरते मोक्ष है, मन मारन से होय।
मन मारन नहिं सहज हैं, मारे योगी कोय॥
कंटक सम का चुभत है, निज मूरखता जान।
करु सत्संग विवेक धरु, तब होवे कल्यान॥
करे अर्चना कौन की, गुरु देव अरु वृद्ध।
इनके सेवन करत ही, मन विक्षेप हों शुद्ध॥

श्लोक— उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते
किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्।
वाक्काय चित्तैः सुखदं यमघ्नं
मुरारिपादाम्बुजचिंतनं च ॥२४॥

प्राण अन्त के काल में, करै शीघ्र क्या काम।
सब तजि मन में रटै नित, नारायण अरु श्याम॥
कर्म वचन अरु चित्त से चिन्तन प्रभु को नाम।
प्राज्ञपुरुष नित ध्यान धरि, कृष्ण चरण अविराम॥

श्लोक— के दस्यवः सन्ति कुबासनाख्याः
क: शोभते यः सदसि प्रविद्यः ।
मातेव का या सुखदा सुविद्या
किमेधते दानवशात्सुविद्या ।।२५।।

डाकूवत् जग कौन है बुरी वासना धार ।
सभा मध्य को शोभता, सद् विद्या जो धार ।।
मातृ सदृश सुखदाकवन, उत्तम विद्या जान ।
दान देत नित वढ़त जो, सद् विद्या पहचान ।।

श्लोक— कुतोहि भीतिः सततं विधेया
लोकापवादाद्भवकानानाञ्च ।
को वाति बन्धुः पितरश्च के वा
विपत्सहायः परिपालका ये ।।२६।।

भीति रहे नित कौन से, जग निन्दा भव-जाल ।
बन्धु पिता सो कौन है, दुख सहाय प्रतिपाल ।।

श्लोक— बुद्ध्वा न बोध्यं परिशिष्यते किं
शिवप्रसादं सुखवोधरूपम् ।
ज्ञाते तु कस्मिन्विदितं जगत्स्या-
त्वसर्वात्मके ब्रह्मणि पूर्णरूपे ।।२७।।

सो शिक्षा है कौन सी, नहिं शिक्षा का काम ।
ब्रह्म ज्ञान को प्राप्त कर, भजहि ईश निष्काम ।।
किसने जाना जगत को, श्री सत्गुरु को जान ।
ब्रह्म रूप मय हो गया, निज स्वरूप पहिचान ।।

श्लोक— कि दुर्लभं सद्गुरुरस्ति लोके
सत्संगतिब्रह्मविचारणा च ।
त्यागोहि सर्वस्य शिवात्मबोधः
को दुर्जयः सर्वजनैर्मनोजः ॥२८॥

किं दुर्लभं या लोक में, सद्गुरु ब्रह्मविचार ।
सत्संगति सद् वस्तु का, बारम्बार विचार ॥
दुर्जय शत्रु कौन जग, कामदेव को जान ।
जिसने जीता काम को, सोई वीर महान ॥

श्लोक—– पशोः पशुः को न करोति धर्मं
प्राधीतशास्त्रोऽपि न चात्मबोधः ।
किन्तद्विषं भाति सुधोपमं स्त्री
के शत्रवो मित्रवदात्मजाद्याः ॥२९॥

परम पशुवत् कौन जग, धर्म नहीं अनुराग ।
शास्त्र पढ़े मन नहिं दिये, हुआ न विमल विराग ॥
ऐसा विष है कौन सा, भासत अमिय समान ।
नारी ताको समझिये, भये भोग गलतान ॥
ऐसा शत्रु कौन का, भासत मित्र समान ।
पुत्र आदि निज जानिये, अबहू नहिं पहचान ॥

श्लोक– विद्युच्चलं किं धनयौवनायुः
दानं परं किञ्च सुपात्रदत्तम् ।
कण्ठङ्गतैरप्यसुभिर्न कार्यं
किं किं विधेयं मलिनं शिवार्चा ॥३०॥

विद्युत समचल कौन है, धन यौवन अरु आयु ।
भजन दान परमार्थ करि, नहिं पीछे पछताय ॥
दान कौन को देय है, लखि सुपात्र विद्वान ।
स्वार्थ भाव राखे नहीं, होय अन्यथा हानि ॥
प्राण कण्ठगत होय जब, किं किं करिये काम ।
पाप मुक्त हो शीघ्र ही, भज नारायण नाम ॥

श्लोक— अहर्निशं किं परिचिन्तनीयं
संसार मिथ्यात्व शिवात्मतत्त्वम् ।
किं कर्म यत्प्रीतिकरं मुरारेः
क्वास्था न कार्या सततं भवाब्धौ ॥३१॥

निशि दिन चिन्तन क्या करै, जग मिथ्या भज ईश ।
कर्म वही करनो भलो, हो प्रसन्न जगदीश ॥

श्लोक— कण्ठङ्गता वा श्रवणङ्गता वा
प्रश्नोत्तराख्या मणिरत्नमाला ।
तनोतु मोदं विदुषा सुरम्यं
रमेश गौरी कथैव सद्यः ॥३२॥

धरै कण्ठ प्रभु नाम को कर श्रवणन गुण ईश ।
शम्भु विष्णु प्रमुदित रहे, रूप लखावे ईश ॥
जिला अलीगढ़ में बसें बरवाना इक ग्राम ।
काश्त विशेष गुलाब की तँह मम जन्म सुधाम ॥
'सतानन्द' मम नाम है, सनाढ्य त्रिपाठी जान ।
प्रश्नोत्तर के रूप में, दोहा करे बखान ॥

भागवती देवी धर्मपत्नी पं० सतानन्द शास्त्री
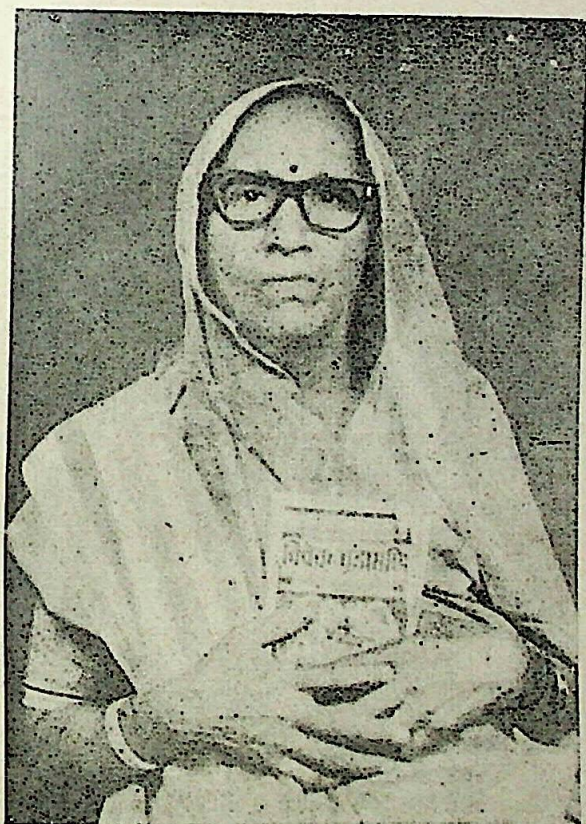
सरल भाषा भजन में, समझायो सब सार।
आशुतोष उन मातु को, प्रणवौं बारम्बार॥

—ना० द० त्रिपाठी

भजनावली

रे मन गुरु पद रज सिर धार, भव से तारेगा ।
खान पान रस भोगन में, रे हुआ मूढ़ गलतान ।।
बिन समझे फँसि फँसि मर्‌यौ रे बुरी परी है बानि–
कि बाजू हारेगा । रे मन

धन सम्पत्ति औलादि कूं रे देख देख मत फूल ।
लाखों तुझसे उठि गये रे, मिली न ढूंड़ें धूल–
कि काल पछारेगा । रे मन

आठं पहर चौंसठ घड़ी रे सबके संग भगवान ।
बढ़भागी दरशन करें रे मन्द भाग हैरान–
कि सतगुरु धारेगा । रे मन

घट घट में परमात्मा रे जामें मेख न मीन ।
निर्भय अद्‌भुत बात है रे जल में प्यासी मीन–
कि समझ विचारेगा । रे मन

हमारे मन भायो जी आतमज्ञान ।

आतम ब्रह्म एकही जानौ दूर भई भय कानि ।
आतम चेतन में कल्पित है दृष्टा दृष्य जहान । हमारे मन
सूरज चाँद अग्नि अरु तारे विजली की चमकानि ।
आतम चेतन की सत्ता से भास रहे पहिचान । हमारे मन
निर्गुण सगुण शान है वाकी करि देखौ कोई ध्यान ।
जाके सत्य अनन्त न जाने वे पूरे अज्ञान । हमारे मन
आतम ज्ञान पायकें प्यारे मन होता गलतान ।
'निर्भय' कहें लखौ आतम को पायो पद निर्वान । हमारे मन

प्रभाती:—

जागो सज्जन वृन्द हमारे ।
मोह निशा के सोवन हारे । जागो स०
जागो जागो हुआ सबेरा ।
मोह निशा का उठ गया डेरा ।
ज्ञान भानु ने किया उजेरा ।
आशा दु:खद अस्त भये तारे । जागो स०
सोते सोते जन्म गँवाया ।
देह गेह में मन भरमाया ।

तुमको चेत अभी नहीं आया।
छोड़ नींद उठो अब प्यारे। जागो स०
यह घर बार जगत सब सपना।
सुतदारा कोई नहिं अपना।
मेरी तेरी छोड़ कल्पना।
माया मोह तजो अब प्यारे। जागो ३
धन दौलत सुत जगत्त झमेला।
बिजली का सा लखे उजेला।
संग में जाये न एक अधेला।
भूले किस पर हो तुम प्यारे। जागो ४
काम क्रोध ने जीव खजाना।
सोते पर लूटा मनमाना।
तुमने कुछ न अभी तक जाना।
सोते मस्त पड़े मतवारे। जागो ५
यह संसार रात्रि है भारी।
सोती इसमें दुनिया सारी।
जगते सन्त कोई व्रतधारी।
परमारथ पथ के उजिआरे। जागो ६
जगकर सन्त शरण में जाओ।
राम नाम के प्रिय गुण गाओ।

पूरण शान्ति हृदय में पाओ ।
मिट जाये भय संकट सारे । जागो ७

जानो तभी कि अब हम जागे ।
जब मन विषयों से खुद भागे ।
पूरण चित्त राम में लागे ।
जिसको पाकर संत सुखारे । जागो ८

सीतापति राघव रघुराई ।
माधव श्याम कृष्ण यदुराई ।
मोहन श्री गोविन्द सुखदाई ।
मञ्जुल नाम जपो सुखकारे ।
जागो सज्जनवृन्द हमारे ।

—-- —

सदा स्याम स्यामा पुकारा करेंगे,
नवल रूप निसदिन निहारा करेंगे ।
यमुना तट लता कुञ्ज ब्रज युवतियों में,
विचरकर यो जीवन विचारा करेंगे ।।
पड़ेगी जो पथिकों की झूठिन प्रसादा,
यही जीविका का सहारा करेंगे ।
बसेंगे करीलों के काटों में निसदिन,
जगत संकटों से किनारा करेंगे ।।
जो दृग बिन्दु से रोज भजते रहोगे,
तो पलकों से पथ को वुहारा करेंगे ।।

जिसको नहीं है बोध तो गुरु ज्ञान क्या करे।
निज रूप को जाना नहीं पुरान क्या करे। जिसको
घट घट में ब्रह्म ज्योति का परकाश हो रहा।
मिटा न द्वैतभाव तो फिर ध्यान क्या करें। जिसको
करके दया दयालु ने मानस जनम दिया।
बन्दा न करे भजन तो भगवान क्या करे। जिसको
रचना प्रभु की देखके ज्ञानी बड़े बड़े।
पावे न कोई पार तो नादान क्या करे। जिसको
सब जीव जन्तुओं में जिसे है नहीं दया।
ब्रह्मानन्द वरत नेम पुण्यदान क्या करे। जिसको

———

रहना नहिं देश विराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूंद पड़े गल जाना है। रहना
यह संसार झाड़ अरु झांकड़ उलझि पुलझि मर जाना है।
यह संसार काठ की वाड़ी आग लगे जरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है। रहना

भजन स्याम सुन्दर का करते रहोगे,
तो संसार सागर ते तरते रहोगे। भजन
कृपा नाथ बेशक मिलेंगे किसी दिन,
जो सत्संग पथ से गुजरते रहोगे। भजन
चढ़ोगे सभी के हृदय पर सदा तुम,
जो अभिमान गिरि से उतरते रहोगे। भजन
न होगा कभी क्लेश मन को तुम्हारे,
जो अपनी बड़ाई से डरते रहोगे। भजन
छलक ही पड़ेगा दया सिन्धु का दिल,
जो दृग 'बिन्दु' से रोज भजते रहोगे। भजन

———

तू तो गयौ अपने कूं भूलि रूप तेरौ अविनाशी।
सुत दारा अरुधन सम्पत्ति राज पाट के बीच।
मैं मेरो में फसि रह्यौ प्यारे आई अविद्या कीच।
बनौ है कैसो विश्वासी। तू तो··· ··· ···
मैं कर्ता अरु मैं ही भोगता मैं आऊं मैं जाऊं।
ऊंचे नीचे स्वर्ग नरक में सुख दुःख जाय उठाऊं।
वनो है ऐसो अभ्यासी। तू तो··· ··· ···
जनम मरण सुख दुःख फ़ायदा हानि इनकी होय

तू तो इनकूँ में अपनो माने तो मैं नाहें कोय ।
डारि लई गल फाँसी । तू तो··· ··· ···
पाँच तत्व के जड़ शरीर कूं रूप आपना माने ।
मैं काला हूँ मैं गोरा हूँ तुच्छ महत् पहचाने ।
कृष्णानन्द यह भासी । तू तो··· ··· ···

———

भज गोविन्दं भज गोविन्दं
वृथा समय नहीं खोना ।
भोजन की कछु चिंता नाहैं,
दूध दही नाहें लोना ।
हरि नाम को तार न टूटे,
भोजन मिले अरोना । भज गोविन्द
काहू की तुम भय मति करियो,
नाहें चाँदी सोना ।
मन की राजी तुम मति करियो,
मति कह्यो तुम दोना । भजन
काहू ते तुम कछु मति कहियो,
मत काहू ते रोना ।
सुख दुःख को कोई मेटि न जावे,
छोटो करो बिछोना । भजन

बार बार यह जनम न पावे,
रहि जाय हाथ खिलौना ।
'सतानन्द' तुमकूँ में समझावे,
तुम रह्यौ नन्द को छोना । भजन

———

यह कैसा रूप है मेरा मैं जग को मोह लेती हूं ।
काम अरु क्रोध के फन्दे जो मेरे हाथ रहते हैं,
लगाकर इश्क़ का धोखा मैं फंदा डाल देती हूं । यह कैसा
योगी जन खोजते फिरते चलते हैं वह मोही मैं,
मैं उनकी नाक़ में दम कर न अपना पार देती हूं । यह कैसा
जो कहते हैं सो मोही मैं जो सुनते हैं सो मोही में,
वह निश्चय है वो मोही में, मान को झाड़ देती हूं । यह कैसा
वन्ध अरु मोक्ष में कल्पी, अनहुई सत्यसी भाँसू,
कि ब्रह्मानन्द मैं झूठी सी वादर फार देती हूं ।

रे मन ! जपिले सीताराम, भजिले राधेश्याम
यह संसार स्वपन है, सच्चा हरि का नाम ।
अन्त समय कोई काम न आवे सुत वनिता अरु दाम । रे मन

वार वार यह जन्म न पावे, ऐसा मौका फिर नहि आवे,
तेरा काम न आवे चाम ॥ रे मन

भूल करे चौरासी जावे, ऐसो ज्ञान फेरि नहि आवे,
वहाँ पल जनहिं आराम ॥ रे मन ।

'सतानन्द' तुम को समझावे गुरु शरण जाय मुक्ति बतावे ।
तेरा सत्य लोक है धाम । रे मन

घर बैठे बनो फकीर, रे मन मारि सुरति कूं डाटो ।
जैसे गाय चरन गई बन में, बछरा जाने छोड़ौ भवन में ।
सुरति लगी बछरा के तन में ।
जाको वन में चरे शरीर ॥ रे मन ।
जैसे घड़ा धरे सिर नारी हाथ जोड़ वतलाप रही ठाड़ी ।
जव जाने सुरति घड़ा में अरी जाको कैसो सधौ शरीर ।
रे मन ।

सुरति लगे तो ऐसी लगनी जैसे बाँस चढ़ी जाय नटिनी ।
सुरति की लगनी कठिन है करनी, डटै तो है जाय तीर ।
रे मन ।

गुरु सत्नाम जपौ मेरे प्यारे तजि अभिमान फन्द कटि सारे ।
कहे साधु पटियारी वारे जाकौ मिले नीर में नीर । रे मन ।

जामनु आऐं ल्हौसारी में तायले ।
काम क्रोध के कोयला करि
तन मन में अगिनी लगाइले ।
तन की खाल सुरति सूं फूकौ,
ब्रह्म अगिनि पर चाइले । जामनु
जोग जुगति की करौ सडाँसी,
नेह निहाई बनाइले ।
ज्ञान हथोड़ा दृढ़ करि मारो,
जनम की रेढ़ मिटाइले । जामनु
ताय तूय जाय निरमल करिले,
सील के नीर बुझाइले ।
जैसी लगनि लगी घट भीतर,
तैसो लुहार बुलाइले । जामनु
दया की टोपी सिर पर धरि,
सतगुरु को शीस नवाइले ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
सहज अमर पद पाइले ।। जामनु

———

गुरु जी मेरे कुतिया बैर परी।
घुरघुराय अरु आँखें काढ़े मारग घेरि खड़ी।
जब सतगुरु ने डण्डा मारौ, पिल्लन खवरि परि। गुरु जी
पिला पाँच पचीसपिल्लियाँ एकहि संग भई।
सो मुख में जिव्हा नाहें इनके खायवे कूँ दौरि परि। गुरु जी
रचना में यह कुतिया जनमी, सवके साथ रही।
शिवशंकर के जाय परवत पँ, उनहूँ पै चोट करी। गुरू जी
चली चली अयोध्या आई, हरिचन्द पास रही।
साठ भार सुवरन के कारण कायऊ वेचि दई। गुरु जी
रामचन्द्र के संग में होकर लंका पहुँच गई।
एक लख पूत सवा लख नाती जरहूँ मेटि दई। गुरु जी
चली चली हथिनापुर पहुची वहाँ कछु काल रही।
विदुरभक्त के दर्शन करिके राजा पै दौरि परी। गुरु जी
चारि धाम चौरासी अड्डा कहूं नाहि टोक भई।
कहत 'कबीर' सुनो भाई साधो, विरले के समझ परी।। गुरु जी

हीरा सौ जनम गवायौ भजन बिन बावरे।
नहिं संतन की शरण में आयौ, नहि तेने हरि गुण गायो।
वहि वहि मरयो बैल की नाहीं, मूरख जनम गवायो।
यह संसार हाट वनिया को, सब जग सौदा लायो।

चातुर माल चौगुना किन्हों, मूरख मोह भुलायो।
सुन्दर फूल देखि सेमर को, सूअना मन ललचायो।
मारी चोंच निकल गई रुइया, सिर धुनि धुनि पछितायो।
यह संसार सपन की माया, इसमें मूरख क्यों भरमायो।
कहत कबीर सुनो भई साधो, यों ही जगते जायो।

———

जिसकी लगन नहिं राम से वह अन्त में पछितायेगा।
बचपन गया बेहोश में, जवानी फिकर अफसोस में,
आया बुढ़ापा बावरे इससे कहाँ बच पायगा। जिसकी
यह बदन मल मल के धोया खाय कर पाला इसे,
यह भी तो तेरा है नहीं तन खाक में मिल जायेगा। जिसकी
धन धाम अरु परिवार क्या तू साथ ले पैदा हुआ।
देख दिल में गौर कर क्या साथ तेरे जायगा। जिसकी
'सरयू' लिखा सतसंग, यहाँ तेरा हितैषी कौन है।
मत भूलि प्यारे राम को, यह वक्त हाथ न आयेगा। जिसकी

———

ज्ञान दे गुरु देब ने मेरे मन का भरम मिटा दिया
जाता था ढूड़न उसे मथुरा बनारस द्वारिका।
उस ही चेतन देव को घट में मेरे दिखला दिया॥ टेक

जिस नजर से जगत को मैं देखता था जुदा जुदा
जोनि जीव अनेक में मुझे एक रूप दिखा दिया ।। टेक

जगत साँचा मानके, फिरता था मैं भटका हुआ ।
स्वपन समान विचार के, सब नाशवान दिखा दिया ।
सुख दुःख भूख पियास जीवन मरण धर्म शरीर का ।
ब्रह्मानन्द स्वरूप को, करके जुदा दिखा दिया ।
ज्ञान दे गुरु देव ने मेरे मन का भरम मिटा दिया ।

———

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठै तो रूठन दे ।
कुटुम्ब परिवार सुतदारा, माल धन लाज लोकन की ।
हरि के भजन करने में, अगर छूटे तो छूटन दे ।
बैठ संगति में संतन की करूं कल्याण मैं अपना ।
लोग दुनिया के भोगों में मौज लूटे तो लूटन दे ।
हरि का भजन करने की लगी दिल में लगन मेरे ।
प्रीति संसार विषयों से, अगर छूटे तो छूटन दे ।
धरी सिर पाप की मटकी, मेरे गुरु देव ने झटकी ।
वह ब्रह्मानन्द ने पटकी, अगर फूटे तो फूटन दे ।
मुझे है काम ईश्वर से जगत रूठे तो रूठन दे ।

———

होरी खेलि चतुर नर ज्ञानी, यह तन मिले न बारम्बार
लख चौरासी योनि भुगत के फिर आयो संसार
विषय भोग तृष्णा के फन्दा तामें फसों गंवार ॥
ज्ञान कुमक्क को सो कर में ले सुमति की छोड़ फुहार
हरि भक्ति में नाच गान कर काया भवन सुधार ॥
सत्य गुलाल अमीर शांति को मलो मलो कपट तजि पार
प्रेम प्रीत की भरि पिचकारी तकि तकि तन पर मार ॥ टेक
पाँच रंग चादर तोहि उढ़ाई धन धन वो करतार
पाप कीच सूँ नीच जाहि तू लीजो मती बिगार ॥ टेक

जागिरे मूरख मुसाफिर यह ठगों का गाँव है ।
जा चला जल्दी यहाँ से मोक्ष तेरा धाम है ।
है ते नव द्वार वारी, यह पुरानी झोंपड़ी ।
हाड़ के ठड्डर लगे, ऊपर से लिपटा चाम है ।
पाँच इन्द्रिय मन विषय विष दे के मारेंगे तुझे ।
फँस न इनके जाल में यह सोचने का काम है ।
बाप माँ भाई भतीजे, भान्जे अरु यार क्या ।
हैं सभी साथी जभी तक, पास तेरे दाम है ।
धाम धन दौलत खजाना, सब पड़ा रह जायगा ।
जायगा रोता अकेला एक सूक्ष्म प्राण है ।

शरीर रथ विषयक भजन

इस उत्तम रथ में बैठि, ब्रह्मपुर को जइयों ।
पाँच तत्व की काया तेरी, इसको रथ पहिचान ।
दस इन्द्रिन के अश्व जुड़े हैं, जाने अति बलवान ।
सीख इन को दइयों ।।
शव्द स्पर्श गन्ध रूप रस, जग में सड़क बनी ।
पाप पुन्य के पहिये लागे, कीरत ध्वना रे तनी ।
बैठि मत मग चलियों ।।
इन्द्री अश्वो के मुख माँही, मन की लगी लगाम ।
बुद्धि सरुप सारथी वैठो, उभय करन कूँ थाम ।
दृष्टि इन पर रखियो ।।
बिगड़े इन्द्री अश्व जुड़े, रथ रथी खड्ड मैं जाय ।
सीखे हुऐ सरल मार्ग ते, ब्रह्म नगर ले जाय ।
सिखाय इन को नहियों ।।
अन्धा बुद्धि सारथी जिसको, विषय सड़क पर लावे ।
ज्ञान नेत्र इनके जो होते, ब्रह्म धाम पहुँचावे ।
लौट फिर मत अइयो ।।
चलते तोय बहुत दिन बीते, अब तक पहुँचों नांय ।
यात्री बिष्णु धाम का था तू, बास कियों जग मांहि ।
देर अब मत करियों ।।

राह माँहि बहु ठहर लियो है, कब तक और रुकेगा ।
कृष्णानन्द भूलि तेरी से, पुनि तोहि काल हनेगा ।
भूलि आइ मत जइयो ॥

मोकूँ निज स्वरूप प्रिय लागे भाजौ काल देखि मेरी चाल ।
सतगुरु के दरबार जाइके कीन्हों यही सवाल ।
मानस रोगों से छुटकारा, दीजै हमें दयाल ॥ मौकूँ
मल विक्षेप आवरण परदा, सतगुरु दीन्हौ टाल ।
भागी हार मान कर माया गली न उसकी दाल ॥ मौकूँ
काम क्रोध मद लोभ मोह का छूट गया जञ्जाल ।
जीव ब्रह्म की भई एकता, मिटीं कुटिलसब चाल ॥ मौकूँ
दुःख दारिद सब दूर भये, मैं है गयो मालामाल ।
अलख्यनन्द दूरि भई फुरणा सतगुरु बाँधा फाल ॥ मौकूँ
तू तो सतचित आनन्द रूप भूलिगयौ सुधि अपनी ।
मात पिता सुत दारा अपनी मानि रह्यौ परिवार ।
यह भव सागर सिंधु अपारा, क्यों डूबे मँझधार ।
तपै तू झूठी तपनी । तू तो··· ···
मन माला कूँ आला मानौ हृदय गऊ मुखी जान ।
राम नाम कूँ जपिनिसिवासर फल पावैगौ ज्ञान ।
मिटैगी तेरी आवागमनी । तू तो··· ···

कहै नहीं सत्संग नंग वनि जंग करै क्या होय।
निज पवित्र हृदय नहिं कीयौ, सतुगुरु मिल्यौ न कोय।
मिटी नहिं तेरी अपनी। तू तो··· ···
अवहूँ चोति करें गुरु दाया रह्यौ नींद में सोय।
जागि-जागि ये रे मन मूरख तैंने तीनों पन दये खोय।
फेरि सिर आई रजनी। तू तो··· ···
गया कहीं न कहीं से आया जगत् चराचर में तू छाया।
ब्रह्मानन्द नेति श्रुति गाया शुद्ध स्वरूप अनूप॥
यही तो मोहि आवे हँसनी। तू तो··· ···

ज्ञान वेंदी लगाई मेरे सतगुरु ने,
शील महदी रचाई मेरे सतगुरु ने।
रूप विगारौं आपनो रे बहुत रची औलाद।
आयौ बुढ़ापौ वावरे कोईन पूंछे बात।
यह भूल निकारी मेरे सतगुरु ने। ज्ञान वेंदी··· ···
अरब, खरब, लों द्रव्य है, महल अटारी धाम।
यहीं पड़े रह जायेंगे, कोई न आवे काम।
मोह हटायो मेरे सतगुरु ने। ज्ञान वेंदी··· ···
ना जानू कै जन्म सै पड़ी रही मैं भूलन में।
सो आज गुरु देव ने झुलाई मैं झूलन में।
निज रूप लखायों मेरे सतगुर ने। ज्ञान वेंदी··· ···

'भागवती' यों कहति है सुनियों सजनीवृन्द ।
बिना गुरु मिलता नहीं शुद्ध सच्चिदानन्द ।
यह जगत् मिटायों मेरे सत् गुरु ने । ज्ञान वेंदी ··· ···

देख एक तू ही तू ही तू सर्वव्यापक जग तू ही तू ।
सत् चित् धन आनन्द नित और अज अव्यक्त अपार ।
अलख अनादि अनन्त अगोचर पूर्ण विश्व आधार ।
एक रस अव्यय तू ही तू ॥१॥ सर्वं व्यापक ··· ···
सत्य रूप से जगत सब और तेरा ही विस्तार ।
जग माया कल्पित सारा, तव संकल्प आधार ।
रचयिता रचना तू ही तू, ॥२॥ सर्वंव्यापक ··· ···
तुझ बिन दूजी वस्तु नहिं, किञ्चित भी संसार ।
सूत सूत मणियों में गूँथा, जल तरंग वस सार ।
भरा एक तू ही तू ही तू, ॥३॥ सर्वंव्यापक ···· ····
माता पिता भ्राता तू ही, और वेद विदित ओंकार,
पावन परम पितामह तू ही, तू ही, शरण दातार ।
स्रजत पालत संहारत तू ॥४॥ सर्वंव्यापक ···· ····
क्षर अक्षर कूटस्थ नित, प्रकृति पुरुष सव रूप ।
मायातीत वेद वर्णंत, पुरुषोत्तम, अतुल अनूप ।
रूपमय सकल रूप ही तू, ॥५॥ सर्वंव्यापक ···· ····

मोह स्वप्न को भंग कर, निज स्वरूप पहचान।
नित्य सत्य आनन्द बोध को, निज में निज को जान।
भरा आनन्द रूप ही तू ॥६॥ सर्वव्यापक ....

राम नाम की बूटी हम तो पीयेंगे,
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।
कोई ज्ञानी आके पिलाये, तब तो पीयेंगे,
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।
पत्थरों को भी तार दिखाया,
सागर ऊपर पुल बनाया।
ऐसे नाम की बूटी हम तो पीयेंगे,
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।
राम नाम भक्तन हितकारी,
राम नाम है संकट हारी।
ऐसे नाम की बूटी हम तो पीयेंगे,
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।
राम नाम शवरी ने गाया,
ऋषियों का अभिमान मिटाया।
ऐसे नाम की बूटी हम तो पीयेंगे।
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।

व्यथितों को धीर बंधाने वाला,
सारे पाप जलाने वाला।
ऐसे नाम की बूटी हम तो पीयेंगे,
हाँ हाँ हम तो पीयेंगे।

———

छोड़ के यह संसार जब तू जायेगा,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा।
इक सत्गुरु सच्चा साथी,
मतलब की है सब दुनिया।
तू उससे प्रीति लगाले,
गर तुझको है कुछ बनना।
प्रभु गुण गाये जा,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा ॥१॥
माँ के गर्भ में तूने,
प्रभु से यह वचन किया था।
तेरे गुण गाऊँगा,
इस वचन पै जन्म लिया था।
जिसे तू भूल गया,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा ॥२॥
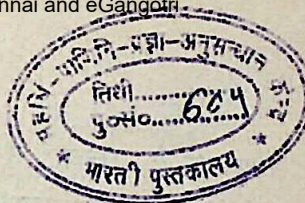
स्वार्थ के सब रिश्ते,
तू जिन पर है इतराता ।
शुभ कर्म बिना इस जग से,
न साथ कोई जाता ।
कि फिर तू पछतायेगा,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा ॥३॥
तू कहता मेरा मेरा,
यहाँ कोई नहीं है तेरा ।
एक दिन मर घट में जाके,
हो जायेगा ढेर ।
कि फ़िर पछतायेगा,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा ॥४॥
जो बीत गई सो बीती,
बाकी जो उसे बनाले ।
अब भी वक्त है तेरा,
तू प्रभु से प्रीति लगाले ।
पार हो जायेगा,
कोई न तेरा साथी साथ निभायेगा ॥५॥

———

मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान तुम्हारे चरणों में
होठों पे तुम्हारा नाम रहे, शुभ सिमरन यह सब धाम रहे।
दिन रात यहीं मेरा काम रहे ।। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।
चाहे संकटों ने भी घेरा हों, और चारों ओर अन्धेरा हो
पर चित्त न डग मग मेरा हो ।। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।
चाहे काँटो पर भी चलना हो, और ज्वाला में भी जलना हो
चाहे छोड़ के देश निकलना हो। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।
चाहे बैरी सब संसार बने। मेरा जीवन मुझ पर भार बने।
चाहे मृत्यु गले का हार बने। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ।।

कभी ऐसा अवसर आवे,
मेरे सत्य स्नेही साजन, ऐसा अवसर आवे।
परम पुरुष के पुण्य प्रेम मैं, मन मग्न हो निशदिन।
भक्ति भावना, भीतर गहरा, सुन्दर रंग बसावे ।।१।।
राम गीत सुन मत्त मैं झूलूं, सुधा स्वादुरस पाऊँ।
अविरल प्रेम जल बहे नयन से, रोम रोम हर्षावे ।।२।।
राम नाम की धीमी धीमी धुन, घट में जगे सुरीली।
मृदु मधुर सुताल चालचल, हृदय में विलसावे ।।३।।
रामकृपा की शक्ति शांति से, सुखद अवतरण भी होवे।
चारुचक्र सहस्र कमल में, विमल ज्योति जग जावे ।।४।।
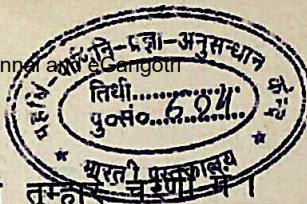
मैं सादर सीस नवाता हूं, श्रीराम तुम्हारे चरणों में ।
कुछ अपनी विनय सुनाता हूं, श्रीराम तुम्हारे चरणों में ।।१।।
घर में वा बन में देह रहे, मन का पद पंकज गेह रहे ।
बढ़ता अनुदिन नव नेह रहे, श्रीराम तुम्हारे चरणों में ।।२।।
जिस जिस योनि में भ्रमण करूँ, जो जो शरीर मैं ग्रहण करूँ ।
वहाँ कमल भृङ्ग वन रमण करूँ, श्री राम तुम्हारे चरणों में ।।३।।
तेरे ही गुणों का हो कीर्तन, भूलूँ न कभी निश दिन पल छिन ।
तन मन धन मेरा हो अर्पण, श्री राम तुम्हारे चरणों में ।।४।।
सुख सम्पत्ति की कुछ चाह नहीं, परिवार मिटे परवाह नहीं ।
हो जाये मेरा निर्वाह यहीं, श्रीराम तुम्हारे चरणों में ।।५।।
है दीन हीन जन रामेश्वर, तेरी हो कृपा पर है निर्भर ।
हो जाये किसी भी भाँति गुज़र, श्रीराम तुम्हारे चरणों में ।।६।।

मैं तो हूँ भक्तों का दास, भक्त मेरे मुकटमणि ।
मुझको भजें, भजूं मैं ताको, हूँ दासो का दास ।।
सेवा करें करूं मैं सेवा, हो सच्चा विश्वास,
यही तो मेरे मन में ठनी ।।

झूठा खाऊं गले लगाऊं, नहीं जाति का ध्यान ।
आचार विचार कुछ नहीं देखूं, देखूं सच्चा सम्मान,

गरुड़ तजूं बैकुण्ठ छोड़ कर नंगे पैरो धाऊं
जहं जहं भोर पड़े भक्तों पै तहं तहं दौड़ा जाऊं,
खबर नहिं देऊं अपनी ॥
पग जापू और सेज बिछाऊं नौकर बनूं हजार ।
हाँकू बैल बनूं गड़वारा
बिन तनखा रथवान, अलख की लखत्ता बानी ॥
जो कोई भक्ति करे कपट से तो भी उसे निभाऊं
साम दाम भय भेद दण्ड से सीधे ही मार्ग लाऊं
यही तो मेरी नीति बनी ॥ मैं तो हूं ॥
गुरु का मन्त्र भला कर मानो,
याही में मन ठैराऊं, हरि हर के
सदगुरु श्री नरसिंह और न शीश नवाऊं,
पति व्रत धर्म बनी ॥

'इति श्री'

पं० सतानंद शास्त्री
बरचाना (अलीगढ़)